श्रीहरिः

"विद्यानिधि"-ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित इस लेखक के अन्य ग्रंथ :

१.	श्रीमद्-भागवत-रसास्वाद (भा.१-२) चतुर्थावृत्ति	३००-००
२.	पुष्टिपुलिन	२००-००
३.	गीतागुंजन (हिन्दी)	७०-००
४.	श्रीमद्-भागवत में विज्ञानविहार(अंग्रेजी के साथ)	१००-००
५.	सुलभ शान्ति (हिन्दी)	२०-००
६.	सुलभ शान्ति (गुजराती)	२०-००
७.	जीवनमंगल	२-००
८.	पत्र परिमल	८-००
९.	व्रजविहार	२५-००
१०.	करालकलिकाल में कल्याण	१-००
११.	त्रिविधनामावली	२-५०
१२.	श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्र	२५-००
१३.	कुर्यात्सदा मंगलम्	२०-००
१४.	विज्ञप्ति (हिन्दी)	३०-००
१५.	सुमंगल-नवनीत-संचय	-
१६.	दुःख-दया का दान	१-५०
१७.	श्रीमद्-भागवतमहापुराणम् (सात्वतसंहिता) (संस्कृत)	-
१८.	श्रीमद्-भागवत प्रथम नजर में	-

इस उपरांत दूसरे अनेक ग्रंथ है ।

श्रीमद्-भागवत

- सिंहावलोकन -

प्रदर्शक : नवनीतप्रिय शास्त्री

प्रकाशक : विद्यानिधि ट्रस्ट, नडीआद

卐

“नमो भगवते तस्मै
कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
रूपनामविभेदेन
जगत् क्रीडति यो यतः ॥”

卐

श्रीहरिः

“ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् ।“

श्रीमद्-भागवत

- सिंहावलोकन -

: प्रदर्शक :

भागवतरत्न, भगवच्छास्त्र-निष्णात, भागवतभूषण
नवनीतप्रिय शास्त्री
वल्लभवेदांताचार्य (प्रदत्त-सुवर्ण-चंद्रक), काव्यतीर्थ
सिविल इंजीनियर

: प्रकाशक :
विद्यानिधि ट्रस्ट
(नडियाद)

श्रीहरिः

प्रकाशक :
विद्यानिधि ट्रस्ट
मोटीपोल - मोदीसांथ
नडियाद ३८७ ००१.
टेलि. नं. (०२६८) २५५०९०८

© इस ग्रंथ के सर्वाधिकार प्रदर्शक के स्वाधीन है

प्रथमावृत्तिः प्रत १००० सं. २०५५
द्वितीयावृत्तिः प्रत २००० सं. २०६१

न्योछावर : रु. २०-००

भाषान्तर कर्ता : डॉ. अनुराग प्रफुल्लकुमार गुमाश्ता

मुद्रक : श्रीयोगिनभाई परीख
न्यू-टेक. फोटो कम्पोझर, नडियाद
फोन : (०२६८) २५६२००८

श्रीहरिः

श्रीमद्भागवत-सिंहावलोकन

प्रकाशन-प्रकाश

(द्वितीयावृत्ति)

भगवानका हृदय-रहस्यका प्रकाश, परम ज्ञान, श्रीमद्भागवत है। सामान्य संसारी भी अपने मनकी गुप्त बात सबके सामने प्रकट न करे, वह स्वाभाविक है। कभी मनमेलवालेको करे। भगवानने तो करुणार्द्रतासे स्वजन-हित के लिए स्वहृदय-रहस्यका प्रकाश कर दिया !- उदार-अपार-अनुग्रह वरसा दिया। विप्रर्षि व्यासजी ज्ञानावतार हैं, फिर भी भक्ति-प्रणिहित-मनसे हैं, समाधि-दर्शन-सौभाग्यसे, उसमें रसपरवश हो गये ! महादेवजी और नन्दनन्दनके अवतार-रूप श्रीशुक, निर्गुणमें परिनिष्ठित हैं, फिर भी, पुरुषोत्तम रसराज श्रीकृष्णकी लीलामें प्रगृहीत चित्तसे कथारसनिमग्न हो गये !

यह श्रीमद्भागवतका स्वल्पदर्शन "सिंहावलोकन"-रूपमें, गुजराती-हिन्दी-अंग्रेजी तीन भाषामें, प्रभुकृपासे, प्रकाशित हुआ था । तीनोंकी प्रथमावृत्ति वैष्णवोंने बधाई लीनी, इस लिये यह द्वितीयावृत्तिके प्रकाशनका सुयोग सुलभ हुआ है । कृपा कृष्णकी वरस रही है । लाभ मिल रहा है । अनेक वैष्णवोंने तन-धन-मनसे सुयोग्य सहयोग दिया है । सबको समंगलाशीर्वाद, हार्दिक धन्यवाद ! सेवारसिक मु.श्रीवैकुंठकाका भगतजीने भरूचसे आकर बटरपेपर-संशोधन कर दिया है । सुजन श्रीयोगिनभाई परीखने मुद्रण-व्यवस्था सुलभ की है । उभयको हार्दिक मंगलाशीर्वाद ! पुनः पुनः प्रभु सेवा दे, कृपा करे,-ऐसी हार्दिक विनंती ।

स.२०६० लि. कृष्ण-कृष्णास्य-कृपाकांक्षी,विनीत,
ज्येष्ठाभिषेक **नवनीतप्रिय शास्त्री**के
ता.४/६/०४ प्रभुवंदन ।

श्रीहरिः

प्रकाशन - प्रकाश

हम इस दुनिया को देखते है ! वह विविध है, विपुल है, विरुद्ध भी है ! दुनिया में जो कुछ है उसे बनानेवाला कोई है । उसका आधार, साधन कुछ है, उसका प्रयोजन भी कुछ है । घर है तो उसे बनानेवाले, आर्कीटेक्ट-इंजीनियर, मजदूर, बढ़ई वगैरह हैं; उसका आधार-नींव वगैरह है; साधन ईंट, सीमेन्ट, लोहा, लकड़ी, वगैरह है । जिसमें निवास करना यह प्रयोजन है । निवास करने का प्रयोजन, सुख, आनंद, शांतिकी प्राप्ति है । यह घर है तो उसके मालिक का ! उसी तरह-यह दिखाई देती, सुनाई देती, अनुभव देती दुनिया है - तो उसे बनानेवाला भी कोई है । सामान्य घर बनानेवाला तो सामान्य व्यक्ति होता है । प्राणी-मात्रके घररूप इस दुनिया को बनानेवाला असामान्य ही है । उसकी शक्ति, उसकी समझ, उसका ज्ञान भी असामान्य है । इस दुनिया-रूपी घरके आर्कीटेक्ट, इंजीनियर,

बढ़ई सब एक ही हैं । आधार-रूप भी वह एक ही हैं । साधन-रूप ईंट, सीमेन्ट, लोहा, लकड़ी भी वो ही है । उसका मालिक भी वो एक ही हैं । विश्व-रचना का प्रयोजन है - आनंद ! उस आनंदका प्रयोजन भी आनंद ही है । जिस आनंद से दुनियाको वे सुख-शांति-आनंद देते हैं ।

इनका परिचय सबको नहीं होता है - सामान्यको नहीं होता है । उनका परिचय तो वेद कराते हैं । वह है - ब्रह्म ! जिनकी स्पष्ट समझ गीतामें दी है,- परमात्मा-रूप से ! उनका वर्णन ब्रह्मसूत्रोंमें आनंदमय-रूपसे है । पुराण में उन्हें कहते हैं- भगवान् ! श्रीमद्-भागवत में उन्हें कहा है - स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ! एक ही और अद्वितीय तत्त्वके ही ये अलग-अलग नाम हैं । उनका संपूर्ण परिचय श्रीमद्-भागवत कराता है ।

विश्वका - विश्वके रचयिताका - रचयिताकी शक्तियोंका - रचयिताकी क्रियाओंका - दुनियामें बसनेवालोंका - उनके सुख-शांति-आनंदके लिए

क्रियाओंका - व्यवस्थित-कथा-समन्वय है - श्रीमद्-भागवत में ! श्रीमद्-भागवत तो है - भगवानके अपने रहस्यका परम ज्ञान ! जिसमें भगवानकी महिमा स्पष्ट दर्शाई हुई है । दुनियामें रहनेवाले सभी श्रद्धावान लोगोंको यह जीवनका सन्मार्ग दिखाता है । यह सफलताका राजमार्ग है । दुःखमें डुबकियाँ खाने वाले या सुखके स्वप्नोंमें सरनेवालेको यह वैचारिक-क्रांतिसे, भ्रांतिको दूर करके आनंद-मग्न बना देता है । देश-विदेश में हमारे “श्रीमद्-भागवत-परिवार” चल रहें हैं । बालक, युवक, वृद्ध,- स्त्री, पुरुष - खूब पढ़े लिखे और सामान्य पढ़े लिखे - सभी उनमें हर्षसे रसपूर्वक लाभ लेते हैं । महाप्रभुजी श्रीवल्लभाचार्यजीके आशय अनुसार श्रीभागवत द्वारा भगवानको जाननेका - उनका अनुभव प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं । परिणाम सभीको प्रोत्साहप्रद मिलते हैं ।

भगवदिच्छासे ही, मुंबईमें, युवक-कथा प्रसंगमें - युवकोंके ऐसे मंगल-जीवन-मार्ग-दर्शनके लिए यह

छोटी पुस्तिका साकार हुई । इस “श्रीमद्-भागवत-सिंहावलोकन'' से दयाजनक, बेचारे, लाचार होकर जीनेवालोंका भी सत्त्व जागृत हो, सिंह जैसे निर्भय और निश्चल बने, अडिग होकर भगवद्-भजन (कृष्ण-सेवन और कृष्णकथासे) आनंद प्राप्त करते हुए जियें,- ऐसा हेतु है । सिंहका अवलोकन स्वल्प और आवश्यक ही होता है । वैसे ही, इस पुस्तिकामें श्रीभागवत का स्वल्प और यहाँ आवश्यक ही दर्शन है । विशेष तो हमारे -

(१) श्रीमद्-भागवत-रसास्वाद
(२) श्रीमद्-भागवतमें अद्भुत-विज्ञान-विहार
(३) पुष्टिपुलिन
(४) गीतागुंजन वगैरह ग्रंथोमें स्पष्ट है ।

उनके मूलमें तो हैं - महाप्रभुजी श्रीवल्लभाचार्यजी के ग्रंथ -

(१) तत्त्वार्थदीप-निबंध
(२) श्रीसुबोधिनीजी वगैरह ।

सिंहावलोकन पश्चात् सिंहकी प्रवृत्ति होती है ।

उसी तरह इस पुस्तिकाको पढ़नेके बाद सबकी वृत्ति-प्रवृत्ति इन मूलग्रंथोमें हो ऐसी मंगल-कामना । इसमें कुछ अयुक्त लगे तो, विदित करने के लिए विज्ञोंको विनती हैं । आधुनिक-रीतिसे इसका युवकोंमें प्रचारण और प्रसारण हो, उस कारणसे, हिन्दी और अंग्रेजी भाषान्तरका भी विचार किया । भारतीयोंको स्वशास्त्र अंग्रेजीमें समझाना पड़े यह तो गौरवरूप नहीं, ग्लानिप्रद है;- फिर भी देश-काल-परिस्थिति अनुसार इसे चला लिया है । भगवानने पहलेसे ही तैयारी रखी थी । हमारे-“श्रीमद्-भागवत-परिवार(बडौदा)''के सन्निष्ठ-स्वकीय-समर्पित चि. प्रिय भाई डॉ. अनुराग प्रफुल्लकुमार गुमाश्ताने सोत्साह तपःपूर्वक यह उभय सेवा की हैं । उसमें सहृदय सहयोग चि. विनीता पाटीलने दिया है । प्रूफ-वांचन-सेवाभी उन दोनों ने की है । उनको हार्दिक मंगल-आशीर्वाद ! (बड़ौदा)-श्रीभागवत-परिवार के सन्निष्ठ-सदस्य डॉ. प्रफुल्लकुमार गुमाश्ता और परिवारने भी प्रूफ शोधन में सोत्साह सहयोग दिया है, तदर्थ हार्दिक मंगल-आशीर्वाद!

गुजराती प्रूफ-वांचनकी सेवा श्रीमद्-भागवत-परिवार (नडियाद)की चि. सौ. दर्शना प्रीतेशभाई शाह (ढबु)ने स्वाभाविक स्वकीयतासे की है । उसे हार्दिक मंगल-आशीर्वाद !

कृष्ण-कृपासे विद्यानिधि-ट्रस्ट तो हमेशा ऐसी सेवामें बद्ध परिकर है । हार्दिक धन्यवाद ! अनेक सहृदयी सुजन वैष्णव तो ट्रस्टकी पुस्तकें स्वजनों-संस्थाओंको स्नेहोपहार-रूपसे देते हैं । ग्रंथ-सेवनसे सभी को कृष्ण-कृपासे जीवन-सन्मार्ग प्राप्त हो, ऐसी हार्दिक मंगल कामना करता हूँ ।

लि. कृष्ण-कृपाकांक्षी
नवनीतप्रिय शास्त्री के
प्रभुवंदन

संवत २०५५, 'राधाष्टमी'
'व्रजविहार' :
मोटीपोल, मोदीसांथ,
नडियाद ।

卐 卐 卐

श्रीहरिः

श्रीमद्भागवत

सिंहावलोकन

सुख दुःख के लिए प्रयत्न :

अवधि बिना का आनंद :

आनंद की अनुभूति सुख है । आनंद की अनुभूति न हो-वह दुःख है । सानुकूल संवेदन सुख है । प्रतिकूल संवेदन दुःख है । सुख-दुःख कोई चीज या वस्तु नहीं हैं, मन के कारण ही वे ऐसे प्रतीत होते हैं। फिर भी इस दुनियामें दुःख किसे नहीं है?दुःख दूर करने के लिए कौन चेष्टा नहीं करता? संपूर्ण सुख किसे है ? सुख ढूँढने में कौन मसला नहीं जाता ? फिर भी सबके दुःख दूर होते नहीं हैं, सुख सुलभ नहीं है, दुःख अपने समय से

ही दूर होते हैं, सुख भी अपने समय से ही मिलते हैं। भगवदिच्छा के अनुसार ही सब होता है । नियत समय पर अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख मिलते हैं । दुःख आते हैं, सुख जाते हैं, सुख आते हैं, दुःख जाते हैं । काल की यह गंभीर गति है। जिसमें सुख-दुःख बहते रहते हैं। अनायास ही मिलते रहते हैं। अच्छे कर्मों का फल सुख रुप से मिलता है । बुरे कर्मों का फल दुःख रुप से दिखता है । अनिच्छा होने पर भी, बिना प्रयत्न के भी, आए हुए सुख-दुःखों को भोगना ही पड़ता है । दुःख बिना प्रयत्नके आते हैं, वैसे ही सुख भी बिना प्रयत्नके मिलते हैं । अनिच्छा होते हुए भी सुख जाते हैं, उसी तरह दुःख भी जाने ही वाले हैं । फिर भी दुःख दूर करने और सुख मिलने के लिए सब प्रयत्न करते हैं । उसमें मसले जाते हैं, त्रस्त होते हैं, मुश्किलों का सामना करते हैं, इस भव में भटकते रहते हैं । जीवन उसमें व्यर्थ बीतता है फिर

भी दुःख जाये और सुख आये, इसमें आनंद तो प्रतीत होता है ।

आनंद के एकाधअल्प बिंदु से ही तो जीवन निभाया जा सकता है, अन्न से नहीं, जल से नहीं, बल से नहीं । दवा या दुआ से नहीं, सम्पत्ति, सत्ता, संतति, सुंदरता, संबंधो से भी नहीं । ज्ञान या विज्ञान से भी नहीं । जीवन मात्र आनंद से ही निभाया जा सकता है । आनंद के अनुभव के बिना तो वैभव, विलास, स्वजन या सुविधाओं के बीच में रहने पर भी मरने का मन तो हो ही जाता है । तन से तो न भी मर सकें - पर मन से तो मर जाने की कल्पना हो ही जाती है । आनंद के बिना तो उद्वेग का वेग कैसे खींचता चला जाता है ? कहाँ है यह आनंद ? जड़ में आनंद का अनुभव होता नहीं है । जीव में भी आनंद प्रकट नहीं है । जीव तो जड़ का उपयोग करके आनंद पाने का प्रयत्न करता है । आनंद उसमें कहीं नहीं है, तो

मिले कहाँ से ? मन पसंद भोजन, वस्तु या व्यक्ति मिलने से अनुकूलता से आनंद प्रतीत होता है । व्यक्ति-वस्तु में यदि आनंद होता तो उसका हमेशा सभी अनुभव कर सकते । उसे भोगने के बीच में यदि कोई प्रतिकूलता आन पड़े तो क्या उसे भोगने का आनंद अनुभव होता है ? अगर वस्तुमें आनंद होता, तो हमेशा और सबको मिलता । ऐसा तो होता नहीं है । जहाँ आनंद प्रकट हो वहीं से वह सुलभ होता है । सुनार के यहाँ सब्जी नहीं मिलती, सब्जी वाले के यहाँ सोना नहीं मिल सकता है न ? जहाँ जो होता है वहीं से वो मिलता है । प्रकट आनंद तो हैं भगवान । भगवान आनंद के बिंदु मात्र ही नहीं वे तो आनंद के सिंधु हैं। जीवन का वे फल हैं । अगाध अवधि बिना का वह आनंद कहाँ से मिल सकता है ?

अवगति : प्रगति : सद्गति :
सीमित आनंद : पूर्णानंद प्रभु :

जगत् तो जड़ है निरानंद है, जीव चेतन है गुप्तानंद है । चेतन को तन मिला जीवन उससे बना । जीवन एक वन है । यौवन उसमें प्रगाढ़ वन है । उसमें खो सकते है, मार्ग नहीं मिलता है, मन व्यग्र होता है, भय के नीचे दब जाते हैं और विकलता में जीवन व्यर्थ बीतता है । उसमें निश्चित गति नहीं मिलती, मन निश्चित नहीं होता । जीवन में अवगति, प्रगति या सद्गति संभव है । इच्छा के विरुद्ध कुछ हो तो इन्सान उबलता है, अकड़ता है और असन्मार्गरूप से हीन कार्य करता है । यह अवगति है । लौकिक उन्नति या सफलता दिखे वह प्रगति है । इच्छानुसार होना, शांति मिलना, सत्कार्य, सन्मार्ग में रुचि होना यह सद्गति है । जीवन के अंत में भी अवगति या सद्गति होना संभव है ।

खुद से जो नहीं मिल पाता उसे पाने के लिए लोग देव-देवियों की आराधना करते हैं । इसमें भक्ति नहीं, लालच और स्वार्थ है । सभी देव प्राकृत हैं । शास्त्रों में कहा गया है कि इन देव देवियों को भी सुख दुःख है । दुःख में देव भी भगवान की शरण की ओर भागते हैं । इन्द्र का स्वर्ग जब दैत्य जीत लेते हैं तब इन्द्रादि देव भी भगवान की ही शरण करते हैं । देवियां भी भगवान की योगमाया के स्वरूप हैं । भगवान की आज्ञा का पालन करती हैं । भगवान की वे शक्तियाँ हैं, भगवान के वश हैं । सभी आनंद के लिए भगवान पर आधार रखते हैं । सभी देवता भगवान के अंग में से ही प्रकट हुए हैं । वे भगवान के अंश रुप हैं । उन देव-देवियों पर आधार रखने से आनंद कितना संभव हो सकता है । भगवान ने जितना अधिकार जिसे दिया हो उतना ही वे कर सकते हैं, दे सकते हैं, और कुछ या सब कुछ कर या दे सकते नहीं हैं ।

भगवान के ज्ञान से या भक्ति से कभी किसी को मोक्ष मिले तो वह सद्गति रूप है । मोक्ष में सायुज्य मिले तो अक्षर-ब्रह्म में या वैकुंठ मिल सकते हैं । यह अक्षर-ब्रह्म या वैकुंठ भी पूर्णानंद रूप नहीं है । वेदों में अक्षर-ब्रह्म का आनंद तो गिना हुआ है । लौकिक कामनाओं से न दबे हुए श्रोत्रिय को भी वह मिलता है । जन्म से जो ब्राह्मण हो, संस्कार से द्विज और वेद विद्या से विप्र हो यह तीन जिसमें हो उसे श्रोत्रिय कहते हैं । वह भी लौकिक कामनाओं से कुचला नहीं जाता तो उसे आनंद मिलता है, पूर्ण नहीं, पर ब्रह्मानंद । इस तरह श्रोत्रिय या मुक्त को भी सीमित, गणित या मर्यादित ही आनंद मिलता है । पूर्णानंद तो मात्र भगवान ही हैं ।

आनंद का आभास-प्रतिबिंब :

भगवान् आनंदमय हैं । आनंदमय यानी आनंदप्रचुर । जिनके आनंद की अवधि या अंत नहीं है । वे अनंत हैं । भगवान् की शक्तियां, गुण,

स्वरूप, नाम, लीला, और कथा अनंत हैं । यह अवधि बिना का आनंद फलरूप है । वह परमानंद है । प्राणी मात्र चेष्टा करते हैं आनंद पाने के लिए - मिलता है प्रायः मात्र आनंद का आभास । इन्द्रियों के अनुकूल अनुभव को आनंद मान लेते हैं । वह तो लौकिक है । वह तो स्फटिक में दिखते दिये के प्रकाश जैसा है,- आभास है । दीया या प्रकाश स्फटिक में स्पष्ट नहीं हैं । मात्र प्रकाश या जलजलापन का आभास है । शास्त्रीय साधनों से अनुभव होता स्वर्ग आदि परलोक का आनंद प्रतिबिंब जैसा है । दर्पण में दीया दिखता है - प्रकाश भी दिखता है पर वस्तुतः दोनों होते नहीं- केवल प्रतिबिंब होता है । आभास अस्पष्ट है, प्रतिबिंब स्पष्ट है लेकिन स्वरूप तो उन दोनों में से किसी एक में भी नहीं है । प्रकट आनंद तो भगवान् हैं । किसी के बनाए हुए या खुद बन बैठे भगवान् ये नहीं हैं । ये तो हैं स्वयं भगवान् ।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णःसदानंद :

यह स्वयं भगवान् तो हैं श्रीकृष्ण । श्री यानी साकार सर्वसुंदर । कृष्ण यानि सदानंद । सदाका, सच्चा, संपूर्ण, निर्दोष सर्वोत्तम आनंद हैं कृष्ण । वे सभी को अपने मनपसंद रूप से मिलते हैं । मनपसंद सब कुछ करते हैं । इस कारण सबके मन को वे पसंद आते हैं । मन इस लिए उनमें लगा रहता है, सभी दुःखों का शमन हो जाता है । जीवन में अवगति, प्रगति या सद्गति में सरनेवाले को इस कृष्ण-गति से ही अभय मिलता है, आनंद का अनुभव होता है । जाननेवाले को अभय मिलता है और अनुभव करने वाले को आनंद मिलता है । यह कृष्ण-गति मिले कहाँ से ?

कृष्णमति - कृष्णरति - कृष्णगति :

अज्ञ और सुज्ञ का प्रयत्न :

कृष्ण-मति मिले, कृष्ण-रति हो जाए तो कृष्ण-

गति पाना संभव है । यह कृष्ण-मति, कृष्ण-रति और कृष्ण-गति संभव है, सुलभ है श्रीमद्-भागवत के सेवन से । अवतार दशा में प्रकट रूप से भगवान श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं द्वारा आनंद प्रदान करते हैं । अन्अवतार दशा में अप्रकट रूप से रहे हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्-भागवत के रूप से अपनी लीला कथा द्वारा आनंद प्रदान करते हैं ।

नासमझ लोग दुःख दूर करने और सुख पाने के लिए भटकते रहते हैं । विचारशील लोग तो जीवन इस तरह व्यर्थ बिताते नहीं हैं । वे तो प्रयत्न करते हैं कालगति और कर्मफल रूप से न मिलती कृष्ण-मति, कृष्ण-रति और कृष्ण-गति के लिए । अज्ञ लोग मनपसंद पाने के लिए और नापसंद रोकने के लिए प्रयत्न करते हैं । सुज्ञ लोग प्रयत्न करते हैं भगवान के हो जाने के लिए-भगवद् भजन के लिए । स्वाभाविक है जन्म मरण के चक्रव्यूह में भटकने से जो नहीं प्राप्त होता, कालक्रम से जो नहीं

मिलता, कर्म-फल-रूप से जो नहीं मिलता, उसे पाने में महत्ता है । जो मिलने ही वाला है उसे पाने के लिए प्रयत्न करने में, क्या महत्ता है ? लौकिक लालसाओं से देवी, देवता या भगवान् को भी पूजने वाले तो बहुत हैं, पर वे भक्त नहीं लालची हैं । मोक्ष आदि के लिये भजने वाले कम हैं - वे भी भक्त नहीं पर स्वार्थी हैं । स्वाभाविक स्नेह से भजने वाले ही भक्त हैं । पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण तो निर्दोष, निःस्वार्थ, शुद्ध प्रेम से प्रसन्न होते हैं । उसमें कर्मफल भुगतना बाकी रहता नहीं है । काल बाधक होता नहीं है । अंतिम जन्म में ही यह भगवद् भक्ति संभव होती है । यह तो कृष्ण कृपा से ही संभव है । इसलिए समझदार लोगों को प्रभु प्रीति के लिए ही प्रयत्न करना जरुरी है । आज प्रायः पढ़ाई तो बढ़ गई है । कल्याण की समझ या विचार शीलता बढ़ी है । क्या पढ़े हुए या अनपढ़ सभी इस बने बनाए हुए रास्ते से नहीं गुजरते ? प्रायः यौवन और

वृद्धावस्था बिना विचार के, लाचार दशा में व्यर्थ बीतते हुए नहीं दिखते ? पेट भरने. के लिए पढ़ाई, यही उसका निष्कर्ष है । नासमझ लोगों की देखा-देखी से, लौकिक सुख पाने और दुःख दूर करने, इधर-उधर भटकना सुज्ञ नहीं करते हैं ।

सुज्ञ श्री भागवत की सेवा करते हैं । :

सुज्ञ श्रीमद्-भागवत का सादर सेवन करते हैं । यह सेवन तीन प्रकार से होता है, (१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण (मनन) । मात्र सुनना ही श्रवण नहीं है । भगवान की बातें सुनकर संदेह बिना स्पष्ट समझकर भगवान में ही तात्पर्य का निर्णय करना, इसे श्रवण कहते हैं । इस तरह निश्चित की हुई बातों को कहना कीर्तन है । यथार्थ श्रवण, कीर्तन हुआ हो तो उससे स्नेह होता है, स्मरण तो बिना प्रयत्न ही होता जाता है । यदि ऐसा नहीं हुआ है तो बारंबार तात्पर्य को याद करना चाहिए । यही स्मरण है । श्रवण, कीर्तन किया हो तो उसका युक्ति सहित

शास्त्र प्रमाण विचार यह मनन है । सिर्फ ग्रंथ पढ़ लेना काफी नहीं है। उस पर विचार करना । यह स्मरण या मनन में उपयोगी होता है। यह श्रवण कीर्तन, स्मरण, बारंबार करना चाहिए । उसे सेवन कहते हैं । अडे में से बच्चा बाहर आने से पहले पक्षी अंडो का सेवन करते हैं न ? इस सेवन में आत्मीयता, आतुरता, अनन्यता, एकाग्रता और धीरज होते हैं । उसमें नियमितता और सातत्य भी होते हैं । इस रीति से श्रीमद्-भागवत का सेवन होता है । ऐसे सेवन से प्रभु में प्रीति होती है । प्रीति बढ़ती जाती है, जीवन की रीति बदलती जाती है और भय चला जाता है । प्रभु प्रगाढ़ प्रीति से प्रसन्न होते हैं, प्राप्त होते हैं । यह श्रीमद्-भागवत सेवन का मुख्य फल है ।

श्रीमद्-भागवत - शब्द का अर्थ :

श्रीमद् यानी, जिसमें शोभा है, जिसमें लक्ष्मी है और जिसमें सुंदरता है । श्रीमद्-भागवत की शोभा

भगवान् स्वयं हैं । भगवान् रसरूप हैं । रस के दस प्रकार हैं : (१) श्रृंगार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्‌भुत (९) शांत (१०) भक्ति

सुख के प्रतीक रूप धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, ये चार भी पुरुषार्थ रसरूप हैं । इस प्रकार चौदह रस वाली भागवत श्रीमद्-भागवत है । दस इंद्रिय और चार अंतःकरण विभाग मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन सभी को वो रस में मग्न कर देती है । रस से आनंद का अनुभव होता है । जिसे जिसमें रस होता है, उसे उसमें आनंद का अनुभव होता है न ? रसात्मक भगवान का रस है श्रीमद्-भागवत । उसमें रस लेने वाले को तो असीम आनंद मिलता है ।

भगवान द्वारा कहा हुआ, भगवान की पहचान करानेवाला, भगवान जिसका फल हैं वैसा, भगवान का नामात्मक स्वरूप, भगवान का कहा हुआ जिसे भक्त फिर कहते हैं, भगवान और भगवद्-भक्तों के संबंध में, स्वयं भगवान के रहस्य प्रकट करनेवाला परम ज्ञान, यह श्रीमद्-भागवत है । कई प्रकार के चुटकुले, मनोरंजक बातें, खुदके गीत वगैरह भागवत नहीं हैं । उसे ग्रंथ या कथा में बुन लेना मिलावट जैसा है । बेवजह फिजूल बातों को इकट्ठे करके सुंदर व्यवस्थित तरीके से बुन लेना, यह तो आज के भूसे या पेचवर्क जैसा है । वह मनपसंद हो, सुंदर लगे मगर उसमें अखंड तत्त्व होता नहीं है । जिस ज्ञान में भगवान की महिमा प्रकट समझ में आती हो, जिस रूप में भगवान् पुरुषोत्तमरूप से समझे जाते हों, भगवान की उस महिमा की पहचान करने वाले गुण, कर्म, शक्तियां व अलौकिक सामर्थ्य वगैरह समझ में आते हों उसे विद्वान् लोग भागवत कहते हैं । लोग तो भागवत के नाम पर जो फिजूल कहा जाए या लिखा जाए उसे ही भागवत मान लेते हैं । श्रीमद्-भागवत तो बुद्धि के गुणरूप ज्ञान से उत्तम है, आध्यात्मिक ज्ञान से उत्तम है, उपनिषद के ज्ञान से भी उत्तम है ।

भागवत तो नित्य सिद्ध ज्ञान है, मूर्ति-मंत ज्ञान है, चैतन्य-रूप ज्ञान है । कथा में लोक मनोरंजन, संगीत, दृष्टांत, दृश्य, श्राव्य, वगैरह मनपसंद लगे, समयानुसार आवश्यक लगे, पर उसमें श्रीमद्-भागवत कहां है ? यही प्रश्न है ? विज्ञ लोग सोचें तो समझ में आ सकता है । एक ओर कथा चलती है दूसरी ओर उसका दृश्य दिखता है । नाटक होता है उससे मनोरंजन तो होता है । भीड़ इकट्ठी होती है । भक्तों को उसमें रस नहीं होता है । जिज्ञासुओं को उसमें से समाधान मिलता नहीं है ।

श्रीमद्-भागवत गद्य या पद्य में है, राग रागिणी में नहीं :

श्रीमद्-भागवत सुंदर प्रसंगोचित छंदो में है, कहीं थोड़ा गद्य भी है । पद्य व श्लोक उसमें शास्त्रीय छंदो में हैं, हृदयंगम हैं ।

संगीत शास्त्र के प्रसिद्ध राग-रागिणी कहे हुए समय पर उत्तम असरकारक होते हैं । कीर्तन-गायन

वगैरह इन्हीं राग रागिणी में हैं । उनमें राग के माध्यम से निर्देश होता है । श्रीमद्-भागवत में गायन का निर्देश हो ऐसा लगता नहीं है । उसमें राग रागिणी वगैरह नहीं हैं । उसमें छंद कहे हैं । अपने अपने स्थान पर दोनों उत्तम हैं, योग्य हैं । श्री शुकदेवजी या श्री सूतजीने संगीतपूर्वक कथा की हो, ऐसा निर्देश नहीं है । श्री व्यासजी ने भी वाद्य नहीं बजाये हैं ।

श्री नारदजी तो सतत घूमते व गाते रहते हैं । कथा समाप्ति में पूजा के प्रसंग में मृदंग, ताल, ललित-कीर्तन करने को कहा है । कथा दरम्यान ऐसा करने का निर्देश दिखता नहीं है । कथा ही मुख्य है । उसमें भी मात्र कथा प्रसंग नहीं, सिद्धांत की स्पष्ट समझ जरूरी है । भगवान लीला करते हैं शास्त्रार्थ का स्थापन करते हैं । वह जीवन घड़ने में उपयोगी है । इसके बिना का जीवन तो खुद के लिए ही अड़चन रूप हो जाता है ।

कथा श्रवण से प्रभु प्रसन्नता :

कथा–श्रवण तो जीवन की प्रथा को बदलता है । व्यथा से बचाता है । भगवान की स्वरूपभूत है कथा । कथा तो भोग में से भगवान की ओर ले जाती है । स्वकथा से भगवान वश होते हैं । हृदय में बसे हुए भगवान काम आदि दोषों को दूर कर देते हैं । काम आदि दोष दूर न हों तो भक्ति नहीं होती है । भगवान तो भक्ति देने के लिए ही कृष्ण-रूप से प्रकट हुए हैं । वे भागवतरूप से भी बिराजते है । श्रीभागवत श्रवण से तो अंतर्यामी भी पवित्र होते हैं । भक्ति से पवित्र हुए अंतर्यामी भक्ति में ही प्रेरणा करते हैं । अपनी माया से, अन्यत्र नहीं । यह उनकी पवित्रता है । इस भक्ति से तो वे ज्ञान देते हैं । ज्ञान त्रिविध है, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, भगवद्ज्ञान । आत्मज्ञान से शोक नहीं रहता है, तत्त्वज्ञान से मोह नहीं होता - मोक्ष मिलता है, भगवद्ज्ञान से भक्ति होती है । भक्ति भी त्रिविध है

(१) रुचि (२) श्रवणादि (३) प्रेम । रुचिपूर्वक के श्रवणादि से भगवान में प्रेम होता है । प्रभु के साथ प्रेम करनेवाला तो प्रभु का बन जाता है । प्रभु के बन जाने पर उसका सबकुछ प्रभु के वश रहता है । भगवान को उसका सर्वस्व निवेदन हो जाता है, और आत्मनिवेदन भी हो जाता है । ऐसे लोग एकाग्रता से कथा सुनते हैं । इस तरह श्रद्धापूर्वक निरंतर दीर्घकाल तक कथा श्रवण से अविनाशी भाव होता है, जो बढ़ता है और सरोवर रूप बन जाता है । हृदय कमलरूप हो जाता है उसमें भगवान प्रवेश करके बिराजते हैं। वैराग्य में प्रतिबंधरूप पापों को भी वे दूर कर देते हैं । यह तो सदानंदरूप भगवान श्रीकृष्ण हैं । वे स्वयं पुरुषार्थरूप हैं । उनको ज्ञान आदि साधन की जरूरत नहीं हैं । शरदऋतु में जल स्वाभाविक शुद्ध हो जाता है । उसी तरह प्रेम जल भी भगवान से शुद्ध हो जाता है । निर्दोष शुद्ध अंतःकरण वाला पुरुष प्रभु को कभी छोड़ता नहीं

है । दोष वाला अंतःकरण ही भगवान के बिना दूसरा सबकुछ ग्रहण करता है । भगवान के रस से तृप्त हुआ मन तो श्रीकृष्ण चरणों में सुख से रहता है । किसी भी प्रकार का क्लेश उसमें लेश भी रहता नहीं है । श्रीमद्-भागवत के श्रवण से भक्ति उत्पन्न होती है । दूसरे साधनों में या देव आदि में निष्ठा बिना के कृष्णाश्रित हृदय में ही भक्ति उत्पन्न होती है । यह संग प्रसंग से आनेजाने वाली भक्ति नहीं है । सानुकूलता में पोषण पाती और प्रतिकूलता में शोषण पाती यह भक्ति नहीं है । यह उत्पन्न हुई भक्ति तो बढ़ती रहती है । शोक, मोह और भय को दूर कर देती है, उसी तरह जैसे घरमें उत्पन्न हुए संतान बड़े होने पर घर का काम कर लेते हैं। उत्पन्न हुई भक्ति को संभाल कर बढ़ाते रहना चाहिए । श्रवण, कीर्तन, स्मरण करते रहने पर यह बढ़ती रहती है । बढ़ती हुई भक्ति से भगवान प्रसन्न होते हैं, प्रकट होते हैं यही फल है ।

श्रीमद्-भागवत के मुख्य ५ फल :

श्रीमद्-भागवत के अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग फल कहे हुए हैं । वे सभी गौण हैं। वो तो लोगों को लालच देकर लौकिक कार्यो में से रोककर भगवद् कार्य में प्रेरणा देने के लिए हैं। श्रीमद्-भागवत स्वयं फल है । निगम कल्पतरु का गलित फिर भी ललित फल है श्रीमद्-भागवत । वेद तो यथाधिकार सभी को फल देते हैं । वे तो अधिकारियों के फल हैं । श्रीमद्-भागवत तो स्वयं वेदों का फल है । फलरूप श्रीमद्-भागवत के बिना तो वेद के पूर्वकांड और उत्तरकांड के ज्ञानी भी निष्फल वृक्ष जैसे हैं । श्रीमद्-भागवत के मुख्य पाँच फल हैं ।

(१) सभी संशयो का समाधान
(२) भगवत् कृपा
(३) भगवान में परम प्रेम
(४) भगवान का साक्षात्कार

(५) अभय की प्राप्ति

श्रवण करने वाले को यह ध्येय रखके प्रयत्न करना चाहिए।

लौकिक वृत्ति या प्रवृत्ति के लिए श्रीमद्-भागवत का उपयोग योग्य नहीं है। यह श्रीमद्-भागवत का फिजूल उपयोग है। श्रीमद्-भागवत तो कृपा कल्पतरु है। जैसा उद्देश्य होता है वैसा फल देता है। स्कूल, कॉलेज, दवाखाने, सदाव्रत वगैरह सामाजिक कार्य हैं। उनके लिए दूसरे हेतु से पैसे इकट्ठे करने में धर्म ग्रन्थों का उपयोग योग्य नहीं है। ऐसे पैसों से बने हुए स्कूल, कॉलेज में पढ़कर निकलने वालों में श्रीमद्-भागवत की असर दिखती है ? दूसरी संस्था में से निकलने वाले लोगों के जैसे ही वे होते हैं न ? ऐसे अस्पताल या दवाखाने में से निकलने वाले रोगी भी क्या भागवत की असर वाले होते हैं ? फलात्मक भागवत को साधनरूप नहीं बना देना चाहिए। साधन तो वह प्रभु प्रेमका

ही है, पैसे, प्रतिष्ठा, परलोक, पद आदि का नहीं। श्रीमद्-भागवत माहात्म्य में धुंधुकारी प्रेत का उद्धार कथा-श्रवण मनन से कहा है। यह तो श्रीमद्-भागवत की महिमा समझाने के लिए है विधि समझाने के लिए नहीं है। जो कार्य गया-श्राद्ध से नहीं हुआ वह श्रीमद्-भागवत से हुआ यह उसकी महिमा है। इस प्रसंग से कई लोगों ने खुद के स्वजनों के उद्धार हेतु कथा आयोजन रिवाज शुरु कर दिया दिखता है। प्रेत होकर कथा सुनना अभिप्रेत नहीं है। कथा तो जिंदा लोगो को सुननी जरूरी है।

यौवन में कथा-श्रवण की मुख्यताः

यौवन वन :

कथा श्रवण वृद्धों या मौत न आने पर जबरदस्ती जिंदा लोगों के लिए ही नहीं। कथा युवावस्था में श्रवण करनी चाहिए। श्री शुकदेवजी ने युवावस्थामें कथा की है राजा परीक्षित ने युवावस्था

में कथा सुनी है । यौवन जीवनवन को रमणीय बना सकता है । अपने क्षेत्र में सन्निष्ठा से मेहनत करनेवाले का जीवन उपवन है । उसमें मेहनत के मीठे फल मिलते हैं । शास्त्र और सत्पुरुष सद्रूप है । बहुत प्रतिकूलता में भी जो दृढ़ या अचल रखे उसे निष्ठा कहते है । बड़ी से बड़ी मुसीबतों में भी जो दृढ़ रहकर सन्मार्ग पर चलाती है वह सन्निष्ठा है । कल्याण की मुख्यता रखकर, सन्निष्ठा से मेहनत करनेवाले का जीवन तपोवन है । उसमें इस लोक के सुख या परलोक के सुख सुलभ होते हैं । मोक्ष को मुख्य रखते हुए सन्निष्ठा से मेहनत करनेवाले का जीवन मधुवन है । उसमें नित्य भगवत सन्निधि होती है । ज्ञान और भक्ति से निर्मलता और प्रेमलता का अनुभव होता है । कृष्ण को मुख्य रखकर तन्निष्ठा से मग्न रहनेवाले का जीवन वृंदावन है । कृष्ण में सुस्थिरता उसे तन्निष्ठा कहते हैं । उसमें कृष्ण सुख सुलभ है । वृन्दावन-बिहारी के प्रकट विहार का

अनुभव हो सकता है । यदि ऐसा कुछ न बने तो जीवन विकटवन है । उसमें प्रभु निकट होने पर भी प्रकट अनुभव देते नहीं हैं । संकट कम हो ऐसा लगता नहीं है ।

जीवन-यौवन-लाभ : कृष्ण विचार :

जीवन ध्येय बिना अनर्थ :

यौवन में यदि जीवन ध्येय स्पष्ट हो तो हम खो नहीं जाते है । जीवन के अंत में नारायण स्मृति यही तो जीवन लाभ है । जीतेजी ही कृष्ण विचार जीवन लाभ है । यह जीवन लाभ सुलभ है श्रीमद्-भागवत के सेवन से । श्रीमद्-भागवत में श्री कृष्ण का ही प्रतिपादन है कृष्ण सेवन ही है । श्रीमद्-भागवत में आनंदरूप कृष्ण की लीलायें हैं । श्रीमद्-भागवत में वर्णन किये हुए सभी अवतार, आदिनारायण के अंश, कला वगैरह, रूप हैं । ये आदिनारायण कृष्ण के अंश रूप हैं । कृष्ण तो स्वयं

भगवान् हैं । कृष्ण विचार से कृष्ण में प्रीति होती है । उससे जीवन में विजय प्राप्त होती है । इन श्रीमद्-भागवत-रूप कृष्ण को समझने में तीन चीजें जरूरी हैं -

(१) बुद्धि की तीक्ष्णता
(२) स्वास्थ्य
(३) अंतःकरण की निर्दोषता

सुनने या पढ़ने पर भी इन तीन बिना श्रीमद्-भागवत समझमें आता नहीं है । आज यौवन के पास प्रायः यह तीनों है । पहले के प्रमाण मे आज पढ़ाई बढ़ गई दिखती है । नये नये संशोधन होते रहते हैं । उनके उपयोग से सुविधायें बढ़ गई हैं । शरीर की स्वस्थता में पहले से ज्यादा आज जागृति दिखाई देती है । उसके लिए विविध साधन भी मिलने लगे हैं । व्यवहार की औपचारिकता, मायाजाल बिना की निर्दोषता, सरलता भी दिखती है । यह तीनों होने पर भी योग्य दिशा में उनका

उपयोग होता नहीं है । यदि दिशा बदल जाए तो दशा भी बदल जाती है ।

सच्चा, स्पष्ट, दृढ़, ध्येय होने पर जीवन की दशा बदलती है । आज प्रायः ध्येय बिना का यौवन-जीवन है और कदापि ध्येय है तो भी धुंधला है । जन्म मिला है इसलिए जीना । जीने के लिए कमाना । कमाने के लिए पढ़ना । पढ़कर कमाना । कमाने के लिए कष्ट सहना । शरीर का पोषण करना । पोषण किये हुए शरीर को पुनः कमाने में लगाना । जीवन में आए हुए प्रसंगो को खत्म करना । सुख-दुःख भोगना । ऐसे संघर्ष में जीवन पूरा करना । ऐसी घटनाओ की घटमाल में घूमते रहना । लोगों की ऐसी देखादेखी के प्रबल प्रवाह में वहते जाना । इसमें कल्याण के अवकाश का विचार कितना रहता है ? कृष्ण से कितने ही दूर भागते ही रहना ? शांति की शोध में अशांति में डूब जाना ? आनंद प्राप्त करनेके लिये उद्वेग खड़ा करते

रहना? सुख के स्वप्न देखकर दुःख में डूब जाना? अंत में कहीं सफलता न मिलने पर निराशा इकट्ठा करना? निराश होकर निष्क्रिय हो जाना? निष्क्रिय होकर निष्फल हो जाना? जो प्रमाद करता है, उसका पतन होता है । जीवन संघर्ष में जो निराश होता है, वह निष्क्रिय हो जाता है । निष्क्रिय होता है, तो निष्फल होता है । यह दुर्दशा है, सही दिशा न मिलने के कारण । उससे उग्रता और व्यग्रता बढ़ती है । ऐसी दुर्दशा में मन बहलाना अच्छा लगता है । मन को बहलाने के लिए व्यर्थ मनोरंजन और व्यसनों में फँस जाते हैं । ऐसे ही लोगों का संग प्रसंग अच्छा लगता है । व्यसन विकास का गला घोंट देता है । विलास पसंद आता है । विलास विनाश की दिशा में खींच जाता है । ऐसी परिस्थिति में स्वयं वापिस आया नहीं जाता । कोई सच्ची बात समझाए तो उसे समझना, स्वीकारना और सुनना पसंद नहीं है । सच्चा समझाने वाले से संघर्ष हो

जाता है । वह शत्रु जैसा लगता है । उसका संग छोड़ देते है और दुःसंग ही पसंद आता है । अनेक जन्मोंका भाग्योदय या कृपा हो तो ही श्रीमद्भागवत का लाभ होता है, भगवद् भक्त मिलते हैं । उनसे सच्चा जीवन ध्येय मिलता है । सत्संग फिर अच्छा लगता है । सत्संग जीवन को अनेक अनर्थो में से बचाता है ।

ध्यान से ध्येयपूर्वक भागवत सेवन की ज़रूरत :

जीवन भगवान ने दिया है उसे व्यर्थ बिताने जैसा नहीं है । जीवन का ज्यादा से ज्यादा सदुपयोग यौवन में हो सकता है । बाल्यावस्था तो नासमझी और खेल-कूद में बीत जाती है । यौवन सुख के स्वप्नों में बीत जाता है । वृद्धावस्था में लाचार दशा होती है । उसमें आचार और विचार को टिकाये रखना आसान नहीं है । परिणाम में, जीवन चाहने या न चाहने पर भी व्यर्थ बीतता है ।

जीवनमें ध्येय स्पष्ट हो तो यौवन में सफलता सुलभ है । जिसे फल मिले वह सफल है । फल दो हैं :

(१) श्रीमद्-भागवत
(२) भगवान्

भगवान् इच्छा करें या कृपा करें तो स्वतः सुलभ हो जाते हैं । पर यह तो दुर्लभ है। भगवान् प्रसन्न हों, तो प्राप्त होते हैं । भगवान् प्रसन्न होते हैं प्रेम से । यह प्रेम श्रीमद्-भागवत प्रदान करता है । श्रीमद्-भागवत के सेवन से प्रभु में प्रेम होने के लिए तीन चीजें जरूरी हैं ।

(१) श्रोता को भागवत का रहस्य ज्ञान
(२) श्रोता का संसार में वैराग्य
(३) भक्त-मुख से श्रवण

यह तीन होने पर भी श्रीमद्-भागवत सुनने या पढ़ने पर भी प्रभु में प्रेम हुआ हो ऐसा दिखता नहीं है, क्योंकि योग्य अधिकार नहीं होता है । प्रीति बिना जीवन की रीति बदलती नहीं है । श्रीमद्-भागवत का

रहस्य ज्ञान बारंवार आदरपूर्वक श्रवण, कीर्तन, मनन, करने से होता है । स्कूल या कॉलेज में नियत किये हुए पाठ या पुस्तक नियमित रीति से पढ़ने पड़ते हैं । संस्था में किये हुए पाठ्य, घर पर उसे पढ़ना और उसपर सोचना पड़ता है । साल मे एकाध विषय के, एकाध पुस्तक का कुछ-कुछ अंश समझ में आता है । सालों के ऐसे अभ्यास के बाद ऐसे विषय में से कुछ समझमें आता है । ऐसे विषय का रहस्य ज्ञान भी, ध्यानपूर्वक सालों तक मेहनत करने के बाद हो - ऐसा संभव है । पूर्णता तो किसी को भी मिलती नहीं है । लौकिक विषय में यह स्थिति है, तो अलौकिक विषय रूप श्रीमद्-भागवत, ऐकाध बार सुनने या पढ़ने से कितना समझ में आ सकता है? इसी कारण महर्षि व्यासजी श्रीमद्-भागवत के रहस्य-ज्ञान को बारंबार पढ़ने की राय देते हैं । जिसे इस तरह श्रीमद्-भागवत और भगवान के रस का ज्ञान होता है उसे और कहीं भी रस रहता नहीं है । अहंता-ममतारूप संसार में रस

नहीं लगता है । मन नहीं मानता है, वैरागी हो जाता है । संन्यासी या बावा होकर भाग जाना पड़ता नहीं है । भक्त-मुखसे बारंबार श्रवण करना जरूरी है । औडियो या विडीयो टेप स्मरण या मनन में उपयोगी है । ऐसी टेप से श्रवण लाभ नहीं होता है । इन टेपों में भक्त की आवाज दृश्य और फोटो होते हैं, भक्त नहीं । भक्त की सन्निधि भी असरकारक होती है । टेप भी खाते-पीते, सोते-जागते, आते-जाते, बेध्यान रूप से नहीं सुननी चाहिए । ऐसी टेप भी कथा श्रवणके रूप से सावधान होकर, समझने के लिए सुनी जाती है ।

श्रीमद्-भागवत के सात अर्थ :

श्रीमद्-भागवत की भाषा :

श्रीमद्-भागवत को सुनने की इच्छा रखनेवाला कोई भी श्रद्धालु व्यक्ति श्रीमद्-भागवत का श्रवण कर सकता है । भगवान की सेवा करनेवालोंमें, भगवान का अलौकिक प्रभाव होता है, उसी तरह श्रीमद्-

भागवत का सेवन या चिंतन करनेवालोमें श्रीमद्-भागवत का अचिंत्य प्रभाव होता है । उसी तरह आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी ने, दैवी-जीवों के उद्धार के लिए कृपा करके, श्रीमद्-भागवत के गूढार्थ प्रकट किये हैं । वे गूढार्थ लीलादृष्टा व्यासजी और लीलाकर्ता कृष्ण को प्रिय हैं । ये गूढार्थ ७ प्रकार के हैं । बिना विरोध के यदि ये समझे जायें तो संसार में से मुक्ति देते हैं । संसार की आसक्ति में से छुड़ाते हैं, और भक्ति में उपयोगी हैं ।

(१) शास्त्रार्थ (२) स्कन्धार्थ (३) प्रकरणार्थ (४) अध्यायार्थ (५) श्लोकार्थ (६) शब्दार्थ (७) अक्षरार्थ

यह सात अर्थ एक ही अर्थ में मिल जाने चाहिए- आनंदरूप हरि की लीला । यह परंपरागत सात अर्थ श्रीमद्-भागवत में होते हैं और कहीं नहीं । श्रीमद्-भागवत की कथा में जहाँ जहाँ विरोध या पुनरुक्ति दिखे वहाँ वहाँ कल्पभेद से समाधान होता है । कल्प यानी ब्रह्माजी का दिन । उन अलग-अलग दिनों में

भगवान की अलग-अलग लीला होती है । ऐसा समझने पर विरोध नहीं रहता है । अथवा भाषा भेद से भी समाधान होता है । श्रीमद्-भागवत संस्कृत भाषा में है । महर्षि व्यासजी को भक्तियोग समाधि में, श्रीमद्-भागवत की लीला का दर्शन हुआ है । इस लीला-दर्शन के यथार्थ वर्णन करते हुए शब्द समाधि में से प्रेरित हैं । इसीलिए सामान्य रीति से यह समाधि भाषा है । उसमें दूसरे का कहा हुआ, या उसका वर्णन, परमत भाषा या मतांतर भाषा है । जहाँ लौकिक वर्णन हो, वह लौकिक भाषा है । ये तीनों भाषायें श्रीमद्-भागवत में हैं । उनमें समाधि भाषा प्रमाणरूप है । परमत भाषा या लौकिक भाषा समाधि भाषा से अविरोधी हों तो स्वीकार्य हैं । नहीं तो बोलने वाले के अभिप्राय जितना ही उसका प्रमाण है । उनमें विरोध या भिन्नता भी हेतु पूर्वक रखी गई है - रह गई या हो गई नहीं है । उसका हेतु लीला विविधता का निरूपण है ।

श्रीमद्-भागवत-श्रीगोवर्धननाथजी का नाम-लीलात्मक स्वरूप :

लीला यानी अनायास से हर्षपूर्वक होती हुई चेष्टा । लीला लीलाके लिए ही होती है । आनंदमय भगवान की लीला भी आनंदमयी है । लीला के श्रवण से भी आनंद का अनुभव होता है । अवतार दशा में भगवान् स्वयं अपने स्वरूप या लीला द्वारा अपने स्वकीयों को कृतार्थ करते हैं । अन्अवतार दशा में लीलाओं की कथा द्वारा स्वकीयता का संपादन करके कृतार्थ करते हैं । लीला लौकिक लगती है लेकिन लीला में लौकिक कुछ होता नहीं है । लौकिक फल भी लीला में होता नहीं है । स्वयं लीला ही फलरूपा है, परमपुरुषार्थ-रूपा है । यथाधिकार वह मोक्ष या लीला प्रवेश देती है । श्रीमद्-भागवत में श्रीकृष्ण की बारह अलौकिक लीलाएँ कही हुई हैं । पहले दो स्कन्धों में कही हुई, अधिकार और साधन लीला, मुख्य लीला में उपयोगी है । मुख्य लीलाएँ दस हैं । (१) सर्ग (२)

विसर्ग (३) स्थान (४) पोषण (५) ऊति (६) मन्वंतर (७) ईशानुकथा (८) निरोध (९) मुक्ति (१०) आश्रय । यह दस लीला विशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण सर्वत्र, सर्वदा क्रीड़ा करते हैं । पहले स्कध में श्रोता-वक्ता के अधिकार का निरूपण है । अधिकार यानी योग्यता या पात्रता, अंतःकरण की परिस्थिति-क्षमता । जिस तरह स्कूल या कॉलेज में प्रवेश योग्यता निश्चित होती है, सभी को प्रवेश नहीं मिलता, निश्चित योग्यता वालों को ही मिलता है, उसी तरह श्रीमद्-भागवत में अधिकार या योग्यता कहा हुआ है । पर यह कथा या ग्रंथ के प्रवेश के लिए नहीं है, यह अधिकार तो फल में उपकारक है । निश्चित योग्यता वाले श्रोता-वक्ता को ही कथा में कहे हुए फल प्राप्त होते हैं-सबको नहीं । प्रथम स्कन्ध में श्रोता-वक्ता योग्यता दिखाई गई है । दूसरे स्कन्ध में ऐसी योग्यता वालों का कर्तव्य निर्धार कहा है । वह भगवान के श्रवण रूप है । श्रवण के विषय रूप दसलीला युक्त भगवान का निरूपण तीसरे से बारहवे

स्कन्ध तक है । इस तरह बारह स्कन्धों में भगवान् और भगवान की लीलाओं का निरूपण है । भगवान जिस तरह श्रीनाथजी रूप से प्रकट हुए है वैसा यह रूप है । कुछ कहे जाने वाले पुष्टिमार्गीय(!) श्रीभागवत को मर्यादारूप मानते हैं । ये तो हास्यास्पद अज्ञान है । क्या निकुंजनायक श्रीनाथजी को मर्यादारूप में गिना जा सकता है ? श्रीमहाप्रभुजी तो स्वयं का अवतार कार्य भी श्रीभागवत के गूढार्थो को प्रकट करना ही बताते हैं । वह क्या मर्यादा रूप हो सकता हैं ? शरण में आये हुये सूरदासजी को कृष्णलीला का ज्ञान भी श्रीमहाप्रभुजी ने उन्हें दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुना के दिया है । पुष्टि कीर्तन के मूल बीज भी यहीं है ।

श्रीमद्-भागवत गोवर्धननाथजी (श्रीकृष्ण) का नाम लीलात्मक स्वरूप है । भगवान बारह अंगोवाले हैं । श्रीमद्-भागवत बारह स्कंन्ध वाली है । जिसमें भगवान की बारह लीलाऐं कही हुई हैं ।

स्कन्ध	अंग	लीला	प्रसंग	अध्याय
एक	दाहिना चरण	अधिकार	३	१९
दो	बायाँ चरण	साधन	३	१०
तीन	दाहिना बाहु	सर्ग	१०	३३
चार	बायाँ बाहु	विसर्ग	४	३१
पाँच	दाहिना उरु	स्थान	६	२६
छः	बायाँ उरु	पोषण	३	१९
सात	दाहिना कर/हाथ	ऊति	३	१५
आठ	दाहिना स्तन	मन्वंतर	४	२४
नव	बायाँ स्तन	ईशानुकथा	२	२४
दस	हृदय	निरोध	५	८७+३
ग्यारह	मस्तक	मुक्ति	२	३१
बारह	ऊँचा किया हुआ बायाँ हाथ	आश्रय	५	१३

इस तरह बारह अंग, बारह स्कन्ध, बारह लीला, (३३२+३)=३३५ अध्याय और ५० प्रकरण श्रीमद्-भागवत में हैं । दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध के

१२,१३,१४ अध्याय श्रीमहाप्रभुजी के मत अनुसार प्रक्षिप्त हैं । लीला तो भगवान की ही है, पर दूसरे कल्प की है काल्पनिक नहीं है । अर्थ संगति दिखाने के लिए, श्री सुबोधिनी जी में उनके अर्थ प्रकट किये हैं ।

प्रमाण और उसका अर्थ :

वेद - गीता - ब्रह्मसूत्र - श्रीमद्‌भागवत, यह चार भगवान को समझाने में उपयोगी हैं । यथार्थ ज्ञान के यह साधन हैं । इन्हें प्रमाण कहा जाता है । जो अनजान की यथार्थ जानकारी दे, उसे प्रमाण कहते हैं । उनके शब्द अलौकिक हैं । ये शब्द प्रमाण हैं । जब तक पूर्ण ब्रह्मज्ञान न हो या पूर्ण भगवद्‌भाव न हो तब तक इन चार के अनुसार ही निर्णय होता है । पूर्ण ज्ञान होने पर सभी शास्त्रों के सभी अक्षर प्रमाण होते हैं । उन सभी शास्त्रों के अर्थ, इन चारों के साथ विरोध में न रहें, उस तरह करने से संगति होती है । शब्द कोष और व्याकरण की मदद से शास्त्र के शब्दों

का अर्थ जो होता हो उसे स्वीकारना चाहिए । उस तरह सीधा-सीधा समझमें आता वाक्य के मुख्य अर्थ को वाचकत्व रूप अभिधा कहते है । वाक्य के तात्पर्य को जो स्पष्ट समझाऐ उसे तत्प्रतीतिजनक तात्पर्यवृत्ति कहते हैं । शब्द के ऐसे सीधे-सादे मुख्य अर्थ के बदले उसमें से लक्षित होता हुआ गौण सभव अर्थ स्वीकारे तो उसे लक्षणा कहते हैं । एक शब्द के बनते हुए अनेक अर्थो में से वाक्य को अनुकूल तरीके से समझाए और इच्छित अर्थ का निर्देश करे उसे व्यंजना कहते हैं- जो तात्पर्य में समायी रहती है । श्रीमद्-भागवत में जहाँ परोक्ष कथाएँ है, वहीं पर परोक्ष तरीके से अर्थ होता है, और कहीं नहीं । पुरंजन-आख्यान, भवाटवि-वर्णन वगैरह ऐसी परोक्ष कथाऐं हैं । शास्त्र के शब्दों को बढ़ाकर, घटाकर या बदलकर अर्थ नहीं किये जाते हैं । जैसा है, वैसा ही स्वीकृत है । सामान्य रीति से लक्षणा अस्वीकार्य है ।

कथा में त्रिविध अर्थ :

श्रीमद्-भागवत में लीला ही मुख्य है । भगवान् कृष्ण ने ही सभी लीलाएँ की हैं । उनकी लीला रूप से ही कथा होती है । यह आधिदैविक अर्थ है । यही मुख्य अर्थ है । “काम-क्रोध वगैरह दैत्य हैं” यह उपनिषद् का वाक्य है । इस तरह कथा में जहाँ जहाँ ऐसे लक्षण मिलते हों उन आधिदैविक कथाओं को ऐसे लक्षण के अनुसार आध्यात्मिक अर्थ में समझी जा सकती हैं । पूतना मोक्ष आधिदैविक लीला है । पूतना मोक्ष द्वारा भगवान ने निज जनों की अविद्या दूर की यह आध्यात्मिक कथा है ऐसा योग्य हो यह समझ लेना चाहिए । उस कारण से सभी लीला कथा में ऐसा आग्रह नहीं रख सकते । लीला निदिध्यासन, या चित्त एकाग्रता के लिए नहीं है । लीला तो आनंद के लिए ही है ।

श्रीमद्-भागवत में लीला कथा ही मुख्य है । जन्म-मरण के क्रम में लोग कुचले जाते हैं । अनेक

प्रकार के क्लेश भुगतने पड़ते हैं । "मैं स्वयं भगवानके चरणका अंश हूँ - दास हूँ"- ऐसे खुदके सच्चे स्वरुपका ज्ञान नहीं है । "मै कुछ हूँ"- ये अज्ञान है, अविद्या है । इसी कारण होती है- विषय भोगेच्छा । भगवान के आनंद का अनुभव हो; तो विषय भोग हों ही नहीं । इच्छा और ईर्ष्या, संसार के संताप को बढ़ाती रहती हैं । मोह उलझन पैदा करते हैं । उनकी तृप्ति के लिए विविध कर्म होते रहते हैं । यह सब क्लेश के कारण हैं । जब तक मोह है तव तक क्लेश दूर नहीं हो सकता । इन सब क्लेश के कारणों को मुक्ति देने के लिए भगवान् अवतार धारण करते हैं । अवतारिक भगवान् स्वलीला द्वारा आनंद प्रदान करते हैं । ऐसे प्रकट प्रभु की लीलायें, श्रवण, कीर्तन, स्मरण करने योग्य हैं । अवतारिक भगवान की लीलायें वास्तव हैं - परम सत्य हैं । श्रीव्यासजी ने श्रीमद्-भागवत में उनका निरूपण किया है । रूपक जैसे आध्यात्मिक

अर्थ करने से लीला कथा की यथार्थता को गौण नहीं कर सकते । परमहंसो, मुनियों तथा निर्मल हृदय वालों को भक्ति प्रदान करने के लिए कृष्णावतार हुआ है । प्रकट हुए भगवान् ने उसी कारण लीलायें की है । वे सब श्रीमद्-भागवत में है । श्रीमद्-भागवत में कोई भी वात काल्यनिक नहीं है । यह सब वनी हुई सच्चाई है । इस कथा का शब्दमय स्वरूप और सामान्य प्रसंग - इतिहास रूप आधिभौतिक कथा है । कथा में भगवान की आधिदैविक लीला समझने से, भगवान में प्रीति होती है, और कृतार्थ हो सकते हैं ।

श्रीमद्-भागवत महिमा :

श्रीमद्-भागवत से सभी प्रमाणों का समाधान :

श्रीमद्-भागवत में तो अधिकार भी भक्तों का है । श्री शुकदेवजी राजा परीक्षितको कथा सुनाने विराजे हैं । देव नदी गंगा का किनारा था । वहाँ देवता आए । अमृत कलश साथ लाए । कथामृत

के बदले यह अमृत देने तत्पर हुए । अमृत दीर्घ जीवन देता है, कथामृत दिव्य जीवन देता है । भगवान की शरणागति से देवों को अमृत सुलभ हुआ । देवता भक्त नहीं थे, इस कारण कथामृत उनके लिए दुर्लभ रहा । देवों को अभक्त जानकर, श्रीशुक ने उनको हँसकर निकाल दिया । उन्होंने बात टाल दी । सत्ता-सम्पत्ति-सुंदरता-सन्मान-सामर्थ्य का समन्वय-स्वर्ग के इन सुरों में है । फिर भी देवताओं में स्वार्थ, ईर्ष्या-भोगवृत्ति है । सदा स्पर्धा, असूया से दुःख निश्चित हैं । भक्ति बिना तो भागवत दुर्लभ है । देवताओं में भक्ति नहीं हैं । पूजा में पधराए जाने वाले देवताओं को भी शुकने कथा से दूर रखा ।

यह है श्रीमद्-भागवत की महिमा । सर्प दंश से या ब्राह्मण के शाप से जो मरे उसे मोक्ष नहीं मिलता । परीक्षितजी को तो यह दोनों थे फिर भी उन्हें मोक्ष मिला - श्रीमद्-भागवत के श्रवण से ।

इससे ब्रह्माजी विस्मित हो गए । उन्होने सत्यलोक में इन सभी साधनों की तुलना की । श्रीमद्-भागवत का गौरव सभीने स्वीकारा । श्रीमद्-भागवत ग्रंथ नहीं गोविंद का रूप है । श्रीमद्-भागवत मात्र पुराण नहीं, पुराणतिलक है । श्रीमद्-भागवत मात्र साधन नहीं फल है । श्रीमद्-भागवत छिलके - बीज वाला फल नहीं, सम्पूर्ण रसमय है । बीज बिना की द्राक्ष जैसा । श्रीमद्-भागवत सामान्य रस नहीं कृष्णरस है । श्रीमद्-भागवत का माहात्म्य पद्मपुराण, मत्स्य-पुराण स्कंदपुराण में कहा हुआ है । श्रीमद्-भागवत में तो किसी दूसरे पुराण का माहात्म्य कहा हुआ नहीं है । यही माहात्म्य है श्रीमद्-भागवत का ।

श्रीमद्-भागवत में ईर्ष्यारहित सत्पुरुषों का निष्कपट परम धर्म कहा हुआ है । यह वेद के कर्मकांड से भी विशेष कमनीय है । श्रीमद्-भागवत में वेद्य, वस्तुतः, कल्याणप्रद वस्तु कही हुई है, जिससे त्रिविधताप मूलमें से दूर हो जाते हैं । यह

वेद के ज्ञानकांड से विशेष गरिमा है । श्रीमद्-भागवत से तो सर्व समर्थ ईश्वर को भी कृति-शुश्रूषु पुरुषो (निपुण-श्रवणेच्छु) शीघ्र ही उसी क्षण हृदय में रोक लेते हैं । यह वेद के उपासना कांड से भी अधिक उत्तमता है । श्रीमद्-भागवत में श्रीकृष्ण ने अपना तेज प्रकट किया है । भगवान का वाङ्मय स्वरूप है । सभी के सर्व दुःख दूर करनेवाली भक्ति देवी का दुःख भी श्रीमद्-भागवत दूर करता है । गया-श्राद्ध आदि से भी जो प्रेतोद्धार न हुआ वह हुआ श्रीमद्- भागवत से । श्रीमद्-भागवत की कथा जहाँ होती है वहाँ स्वयं भगवान् अपने परिकर के साथ पधारते हैं, यह है महिमा श्रीमद्-भागवत की ।

महाभारत में धर्म से अर्थ-काम मिलते हैं ऐसा व्यासजी ने कहा है - भगवदिच्छा से नारदजी के सत्संग के बाद पुरुषार्थो का साधन क्रम व्यासजी ने बदल दिया है । योग्य आहार विहार-काम, उससे टिकता जीवन-अर्थ, उससे होता योग्य-धर्म, धर्म से

मिलता - मोक्ष । यह क्रांतिकारी दर्शन श्रीमद्-भागवत में है । श्रीमद्-भागवत व्यासजी की वैचारिक-क्रांति है । भ्रांति को दूर करती है । सकल शास्त्र-निरूपण के बाद भी व्यासजी का दुःख श्रीमद्-भागवत-रचना से ही दूर हुआ । आनंद का अनुभव हुआ, यह महिमा है श्रीमद्-भागवत की ।

भगवान् स्वयं लीला करने के लिए एक में से अनेक रूप हुए । निष्प्रपंच प्रभु प्रपंच रूप हुए । एक अद्वितीय ब्रह्म में से ऊँच-नीच वगैरह बहुरूप हुए । स्वयं में से अनेक आत्मा का सर्जन करके परमात्मा हुए । आत्माओं में से ब्रह्मधर्म और आनंद, स्वेच्छासे तिरोहित-अप्रकट-लुप्त किये । अविद्या से संबंध कराया । आत्माएँ लौकिक लालसाएँ वाली हुई । विश्वरूप और स्वस्वरूप को भूलके मोह में उलझातीं रहीं । कृपार्द्र कृष्ण ने उनको यथार्थ ज्ञान दे कर मुक्त करना चाहा । वेदों का विस्तार ब्रह्माजी के लिए किया । पुराण सहित या अनुग्रह पूर्वक समझ

में आए उस तरह से वेदों का विस्तार किया । भगवान या भगवान के शरणागत ही वेदों को यथार्थ समझते हैं । वेदमें, वेदार्थ में, वेदों-वर्णित, भगवान् के स्वरूप में विद्वान लोग भी वासनावश मोहित हो जाते है । वेद तो भगवान के निःश्वास रूप हैं । निःश्वास की बात विश्वास बिना किसे कही जाय । विश्वासी मित्र मिले अर्जुन । उनको गीता रूप से श्रीमुख से वेद रहस्य कहा । कहने पर भी जाने बिना क्या स्पष्ट होता है ? ज्ञान-कला का अवताररूप हैं व्यासजी । ब्रह्मसूत्र में गीतार्थ का विस्तार किया । फिर भी संतोष न हुआ, खेद रहा । भक्त नारदजी के सत्संग से समाधि में लीला-दर्शन का प्रादेश-संदेश मिला । समाधि में श्रीमद्-भागवत दर्शन हुआ । उसे क्रमबद्ध किया-सर्व समाधान उसमें से मिला । वेद का रहस्य गीता में, गीता का रहस्य ब्रह्मसूत्र में और ब्रह्मसूत्र का रहस्य श्रीमद्-भागवत में स्पष्ट हुआ है । इस तरह वेद-गीता-ब्रह्मसूत्र के

विषयों का विस्तृत स्वाभाविक भाष्य है श्रीमद्-भागवत ।

वेद वाक्य में होता हुआ संदेह गीता के कृष्ण वाक्यों से दूर होता है । गीता में हुए संदेह का समाधान ब्रह्मसूत्रों से होता है और ब्रह्मसूत्रों का श्रीमद्-भागवत से । इस तरह श्रीमद्-भागवत सर्व का समाधान करता है । इस तरह सर्व प्रमाण में प्रधान है श्रीमद्-भागवत । वेद-गीता-ब्रह्मसूत्र-प्रस्थानत्रयी रूप से प्रसिद्ध है, तो श्रीमद्-भागवत चतुर्थ प्रस्थान है । यह है महिमा श्रीमद्-भागवत की ।

धनार्थी-कृष्णार्थी-श्रोता वक्ता :

वैष्णव-शुद्ध वैष्णव-मुख्य वैष्णव-अकृत्रिम नित्य वैष्णव :

श्रीमद्-भागवत वेद वृक्ष का गलित फल है । वेद के औपनिषद ज्ञान में और श्रीमद्-भागवत के ज्ञान में त्रैवर्णिकों का ही अधिकार है । स्त्री-शूद्रों

को इनके सिवाय का अधिकार है । भगवान के गुण-गान, लीला के श्रवण-कीर्तन तो सब कोई कर सकते हैं । श्रोता को वक्ता की पात्रता देखकर श्रवण लाभ लेना चाहिए । वक्ता को श्रोता की योग्यता देखकर श्रवण लाभ देना चाहिए । दोनों का समानुभाव हो तो, फलानुभाव, भक्तिवृद्धि आनंद का अनुभव होता है । धनार्थी (लोकार्थी) श्रोता-वक्ता को फलानुभाव नहीं मिलता है । कृष्णार्थी श्रोता-वक्ता अलौकिक लाभ से कृतार्थ होते हैं । लोकार्थी/धनार्थी श्रोता-वक्ता श्रीमद्-भागवत की कथा में से पैसा, पद, पुण्य, प्रतिष्ठा आदि ढूंढते है । विविध प्रकार की युक्ति-प्रयुक्ति, सौदाबाजी-दावपेंच, नीलामी जैसे धंधादारी दृष्टिकोण उसमें अपनाये जाते हैं । इस कारण लोक आकर्षण कार्यक्रम बनाए जाते है । धर्म सिद्धांत की यथार्थ समझ बिना के लोगों की धार्मिक मनोवृत्ति को बहकाने का प्रायः गैर-लाभ लेने का भी सुनाई पड़ता है । कृष्णार्थी श्रोता-वक्ता तो

भगवत्प्रीत्यर्थ श्रवण-कीर्तन में रत रहते हैं । बाह्याडंबर बिना ही उनका कथाक्रम चलता है । ऐसे यथार्थ श्रवण-कीर्तन से ऐसे शुद्ध वैष्णवों को प्रभु प्रीति फलित होती है । प्रभु प्राप्ति होती है । प्रभु में स्वाभाविक स्नेह वाले, प्रभु की ही इच्छा करने वाले, मुझे भगवान् ही चाहिए, ऐसे स्पष्ट दृढ ध्येय वाले सेवा कथा परायण जीवन वाले, शुद्ध वैष्णव हैं । मार्ग-दीक्षा लेनेवालों में भी वैष्णवत्व तो प्रभु प्रेम से ही गिना जाता है । स्वप्रभु की नाम प्रीति से हृदय पिघल जाए, आंखों में आंसु भर आयें, वाणी गद्गद् हो जाये, शरीर में रोमांच हो जाए, वह प्रभु प्रेम की निशानी है । अन्याश्रय बिना का-असमर्पित वस्तु का त्याग करनेवाला-प्रभु से प्रेम करनेवाला शुद्ध वैष्णव है । लोक तथा लोकधर्मों का त्याग करनेवाला लोकानुगत भजनीको तथा उनके उपदेशों का त्याग करनेवाला, भगवान के चरणों का दृढ आश्रय करनेवाला, परस्पर भगवद् गुणानुवाद करने में जिसके

देहधर्म छूट गए हैं, ऐसा मुख्य वैष्णव है । स्वाभाविक स्नेह जिसे अपने प्रभु में है, सर्वदा जो भगवद्-भक्त हो वह अकृत्रिम-नित्य वैष्णव है । ऐसे वैष्णवों के पास भगवद्-गुणानुवाद करने में अलौकिक आनंद का अनुभव होता है । भगवान स्वयं अपने गुणानुवाद सुनने अपने परिकर के साथ पधारते हैं । आसक्तिपूर्वक गुणानुवाद करने वालों को फलावस्था में भगवान के स्वरूप का निरंतर दिव्य साक्षात्कार होता है । जीते जी ही वो तो भगवान के साथ मित्र की तरह मनपसंद बातें करता है ।

त्रिदेवों का श्रीमद्-भागवत सेवन :

सप्ताह कथाः सप्ताह श्रवण विधि :

इस श्रीमद्-भागवत का सेवन तो स्वकार्य सामर्थ्य के लिए ब्रह्माजी प्रत्येक सात दिन में करते हैं । विष्णुजी प्रत्येक मास में करते हैं, शिवजी प्रत्येक वर्ष में करते हैं । तन-मन की अस्वस्थता से कलियुग में बहुत दोष होने से सात दिन में, (सप्ताह) श्रवण करना कहा है । अन्य हेतु से अन्य क्रम भी अन्यत्र कहा है । श्रीशुक-सनतकुमार-सूतजी-गोकर्ण वगैरह ने कथा-सप्ताह की है । सूर्य, विष्णुदूतने भी ऐसे सप्ताह श्रवण का विधान किया है ।

योग्य मंगल समय पर कथा श्रवण की सप्ताह करनी चाहिए । कथा श्रवण के लिए सभी को निमंत्रण देना चाहिए । क्षण भी यहाँ तो दुर्लभ है । कथा की सारी व्यवस्था पहले से ही कर देनी चाहिए । पवित्र-विशाल-स्थल पर कथा मंडप करना चाहिए । विप्र-विरक्त-वैष्णवों को योग्य आसनों पर आगे बैठाना चाहिए । मात्र यजमान या चंदा देने वालों को नहीं । यजमान आए हुओं के स्वागत में ही रहे और कथा छोड़ दे ऐसा योग्य नहीं है । संस्था की कथा में कोई यजमान ही नहीं होते हैं । यजमान पूजन-होम में ही व्यस्त रहे, कथा में नहीं-ऐसे में यथार्थ मुख्य श्रोता कौन है ? यह तो जैसे

श्रीशुक परीक्षित बिना कथा करते रहें,- जो योग्य नहीं है ।

विरक्त-विप्र-वैष्णव;- वेद शास्त्रज्ञ-सिद्धांत अनुरूप दृष्टांत कहने में कुशल, प्रश्नों के उत्तर देने मे धीर, निरपेक्ष-पुरूष को वक्ता बनाना चाहिए, अन्यको नहीं । विधि पूर्वक-नियम पूर्वक कथा श्रवण करना चाहिए - श्रीमद्-भागवत की तथा वक्ता की पूजा करनी चाहिए । वक्ता में श्रीशुकदेवजी की भावना करनी चाहिए । ऐसे वक्ता को कथा में किसी के सामने खड़े नहीं होना चाहिए । कथा भगवद्रूप है । जिनका अर्थघटन व व्याख्यान भगवद्रूप का श्रृंगार है । श्रृंगार करते हुए किसी के आने पर छोड़ना नहीं चाहिए । पूज्य पुरुष आए तो कथा प्रसंग पश्चात् वक्ता को उनका सादर-वंदन पूजन करना चाहिये । लोक व्यवहार-नौकरी-धंधा-घर परिवार सभी की चिंता छोड़कर एकाग्रता से कथा श्रवण करना चाहिए । उपवास वगैरह गौण हैं - कथा श्रवण मुख्य

है । सन्मुखता बनी रहे, देहधर्म अवरोध न करें, वैसे आहार, नियम रखने चाहिए । शुद्ध बुद्धि रखनी चाहिए । काम, क्रोध, दंभ, लोभ, द्वेष, मोह, मद, मान, मत्सर, प्रमाद, निंदा, छोड़ देने चाहिए । सत्य, विनयता, सरलता, मौन, पवित्रता, उदारता रखनी चाहिये । कथा-विराम में कीर्तन करना चाहिए । सुनी हुई कथा किसी और को सुनानी या समझानी-वह यहां कीर्तन है । कथा समाप्ति में श्रीमद्-भागवत और वक्ता का पूजन करना चाहिए । पूजन के प्रसंग पर मृदंग आदि के साथ सुंदर कीर्तन करने चाहिए । कथा दरम्यान संगीत करना कहा गया नहीं है । प्रसाद-तुलसी माला श्रोताओं को देनी चाहिए । जाति-भोजन वगैरह व्यवहार नहीं कहे हैं । कथा समाप्ति के बाद-दूसरे दिन विरक्तों को गीता पाठ करना चाहिए । गृहस्थों को होम करना चाहिए । कथा दरम्यान होम में वैठकर कथा श्रवण छोड़ देना योग्य नहीं है, श्रवण मुख्य है । मर्यादा में श्रीविष्णु

सहस्र-नाम-स्तोत्र या पुष्टि में श्रीपुरुषोत्तम सहस्र-नाम-स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । अकिंचन भक्त-निष्काम वैष्णव ये तो श्रवण मात्र से ही पावन है । उन्हें होम आदि का आग्रह नहीं है । श्रवण पश्चात् मनन का ही आग्रह सबके लिए है ।

अस्पष्ट-अदृढ़ ज्ञान, प्रमाद पूर्वक श्रवण, संदिग्ध मंत्र, व्यग्र चित्त से किया हुआ जप, असर नहीं करते हैं । (१) वक्ता-गुरु के वाक्य में विश्वास (२) स्वयं में दीन भावना (३) मन के दोष (चंचलता, विकार वगैरह) पर विजय (४) कथा में निश्चल बुद्धि यह चार फल में उपकारक हैं ।

श्रीमद्भागवत व्याख्या :

जिसमें 'गायत्री' का अर्थ पहले हो, जहाँ धर्म विस्तार वर्णित है, जिसमें वृत्रासुर वध है, वह श्रीमद्-भागवत है ।

परीक्षित शुक संवाद रूप में अठारह हजार श्लोक में श्रीमद्-भागवत है । ऐसी उनकी व्याख्या में हैं ।

(१) सर्ग (२) विसर्ग (३) वृत्ति (४) रक्षा (५) मन्वन्तर (६) वंश (७) वंशानुचरित (८) संस्था (९) हेतु (१०) अपाश्रय

ऐसे दस लक्षणों वाला महापुराण कहा जाता है । श्रीमद्-भागवत ऐसा महापुराण है । उसमें दस नाम अलग हैं ।

प्रमाण के अनुसार देवी भागवत ऐसे महापुराण में गिना नहीं जाता । इस सम्प्रदाय के अनेक विद्वानों की इस पर टीकाएँ है । कई प्राचीन टीकाएँ भी हैं । बोपदेव के पहले के विद्वानों ने भी इस पर उल्लेख किये हैं । इसीलिए यह बोपदेव की रचना नहीं है । महर्षि व्यास का यह समाधि दर्शन है । चार पुराण-संहिता और वेद विभाग, ब्रह्मसूत्र और महाभारत रचने के बाद व्यासजी ने श्रीमद्-भागवत प्रकट किया है । फिर दूसरे अधिकार वालों के लिए अन्य पुराणादि की प्रवृत्ति की है । भगवान के निःश्वास में से वेद सहित पुराणादि भी प्रकट हुए

हैं। वेद के अर्थो का विस्तार पुराण है। इतिहास-पुराण पंचम वेद गिने जाते है।

प्रथम स्कन्ध सार :

मंगलाचरण के तीन श्लोक :

साधारण अर्थ और संगति :

श्रीमद्-भागवत परमहंसो की संहिता रूप से प्रचलित है। वास्तव में महर्षि व्यासजी ने तो उसे सात्वत संहिता कहा है। सात्वत संहिता यानी भगवान के वश रहनेवाले, आत्मसमर्पण करनेवाले, वैष्णवों का वेद। यह सात्वत संहिता श्रवण से भक्ति उत्पन्न करनेवाली है। उसके प्रारंभमें श्रीकृष्ण की ज्ञान-कला के पूर्णावतार, भगवान् महर्षि द्वैपायन वेद व्यासजी तीन श्लोकों में मंगलाचरण करते हैं। मंगलाचरण के पहले श्लोक में श्रीमद्-भागवत के अठारह हजार श्लोकों में गाए हुए भगवान का लीला सहित संक्षिप्त में निरूपण है। उसके पहले चरण में

जगत के उपादान और निमित्त, सर्व-मूल-कारणरूप, अभिन्न निमित्त-उपादान कारणरूप, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, स्वरूपानंद में खेलते भगवान का निरूपण है, रूप-लीला है। दूसरे चरण में, वेदादि नाम के भी सर्व-मूल-कारणरूप भगवान का परिचय है, नाम-लीला है। जगत से बंधन और वेद से मोक्ष देते हुए प्रभु क्रीड़ा करते हैं। यह माहात्म्य है। इस प्रकार पूर्वगुणविग्रह भगवान का वर्णन है। तीसरे चरण में भगवान की निर्दोषता, वरणीयता का निरूपण है। चौथे चरण में यही भगवान् सेवकों का उद्धार करते हैं ऐसा कहा है। सर्वलोक-वेद-प्रसिद्ध-पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण को प्रथम पद्य में गाया है। यह श्लोक बीज रूप है। उसमें गायत्री के अर्थ का भी वर्णन है। गायत्री वेद माता है। इस तरह वेद और श्रीमद्-भागवत एक ही बीज वाले होने से समान हैं। परस्पर विरोधी नहीं हैं। श्रीमद्-भागवत वेद से दुर्बल नहीं है।

मंगलाचरण का दूसरा श्लोक वृक्षरूप है । उसमे ईर्ष्याबिना के सत्पुरुषों का, कपट बिना का परम-धर्म श्रीमद्-भागवत में कहा हुआ है । जानने जैसा, वास्तवरूप, कल्याणप्रद, सभी दुःखों का मूल निवारण रूप, ब्रह्म(भगवान) का निरूपण श्रीमद्-भागवत में है । श्रीमद्-भागवत के श्रवण से भगवान शीघ्र हृदय में पधारते हैं । उसी क्षणसे हृदय में स्थिर हो जाते हैं । उनको सुनने की इच्छा रखनेवाला और जीवनके सच्चे मर्म की आकांक्षा करनेवाला निपुण व्यक्ति, यह लाभ पाकर कृतार्थ होता है । महामुनि व्यासजी की समाधि में दर्शन किये हुए इस भागवत को सुनने के बाद दूसरा कुछ सुनना बाकी रहता नहीं है । दूसरा कुछ सुनने से विशेष लाभ नहीं है ।

मंगलाचरण का तीसरा श्लोक फलरूप है । जिसमें श्रीमद्-भागवत स्वरूप का निरूपण है । भगवान के व्यापिवैकुंठ में नैःश्रेयस नाम का उद्यान है । जिसमें निगम कल्पवृक्ष हैं । इस वेदवृक्ष से गिरा हुआ पका

हुआ फल श्रीमद्-भागवत है । व्यासजी, अवतार के समय उसे ग्रहण करके भूतल पर आए हैं । उसमें वेदों का सार-रस पूरा भरा हुआ है । भगवद् रस और भक्तिरस का उसमें संयोजन है । यह फल होते हुए भी उसमें छिलका या बीज जैसा फेंक देने जैसा कुछ नहीं है । वह संपूर्ण रूप से रसमय है जैसे कि विना बीज की द्राक्ष या अनार । वह पृथ्वी पर सरलता से मिलता है । रसिक और भावुक उसका स्वाद ले सकते हैं । लौकिक इच्छाओं से रहित, वो रसिक है । कथा सुनकर ऐसी लीला भावना कर सके ऐसा भावना चतुर, वो भावुक है । मृत्यु पर्यंत बार बार श्रीमद्-भागवत रसपान करनेका स्नेह आग्रह रस-परवश व्यासजी करते हैं । मोक्ष से भी महँगा भक्ति रस श्रीमद्-भागवत में से मिलता है । इस तरह पहले तीन श्लोकों की संगति बीज, वृक्ष, फल भाव से है ।

प्रथम स्कन्ध-प्रकरण-विभाग-विचार :

कथा रूप श्रीमद्-भागवत की शुरूआत चौथे श्लोक से होती है । महाप्रभुजी श्रीवल्लभाचार्यजी के मत से कथा के अर्थ अनुसार (१) सामान्य, (२) असामान्य और (३) गुणातीत ऐसे तीन अधिकार प्रकरण प्रथम स्कन्ध में हैं । उनके ९-९-१ अध्याय हैं । मतांतर अनुसार-हीन-मध्यम-उत्तम अधिकार है । उसके ३-३-१३ अध्याय हैं । यह विभाग कथा के देश काल अनुसार है ।

श्रीमद्-भागवत के मुख्य तीन श्रोता-वक्ता हैं । कथा भी तीन स्थल पर तीन समय पर हुई है । उत्तम अधिकारियों की कथा गंगा के किनारे हुई । आज उस स्थल को शुकताल कहते हैं । वहाँ वक्ता शुकदेवजी हैं जो महादेवजी का अवतार हैं । उस रूप से भगवान नंदनंदन पधारे हैं ऐसा भी उल्लेख होता है । कल्प भेद से ऐसा संभव है । उनके मुख्य श्रोता राजा परीक्षित हैं । भगवान् ने भागवत प्रचार के लिए ही उनकी रक्षा की है । ऋषि-मुनि भी विष्णु-जन-प्रिय श्री शुकके श्रोता हैं । संसारियों को भी करुणा से श्री शुकने कथा सुनाई है । एक ही सभा में तीनों ने यह कथा सुनी है । सूतजी ने यहाँ कथा सुनकर नैमिषारण्य में ऋषियों को कथा सुनाई है । परीक्षित ने वैराग्य से अन्न-जल छोड़कर प्रायोपवेष किया, तब यह कथा हुई है ।

मध्यम अधिकारियों की कथा सरस्वती नदीके किनारे हुई है । शम्याप्रास नाम के व्यासाश्रम में हुई है । यहाँ वक्ता नारदजी और श्रोता व्यासजी के संवाद-रूप से हुई है । व्यासजी के खेद प्रसंग पर हुई है ।

हीन अधिकाारियों की कथा नैमिषारण्य में हुई है । ऋषियों के हजार वर्ष के “सहस्रसम’’ सत्र प्रसंग पर हुई है । उसमे वक्ता सूतजी हैं और श्रोता शौनक और ८८,००० ऋषि हैं । इन तीन के अलावा और भी श्रोता वक्ता श्रीमद्-भागवतमें दिखते हैं । अलग अलग प्रसंगों पर उनकी कथा हुई है । वे

सभी, इन मुख्य तीन में समा जाते हैं । विदुरजी ने तीसरे और चौथे स्कन्ध की कथा मुनि मैत्रेयजी से सुनी है । ग्यारहवें स्कन्ध में श्रीकृष्ण ने उद्धवजी को ब्रह्मवाद सुनाया है । इन विदुरजी और उद्धवजी का अधिकार तो परीक्षित से भी उत्तम है । पर उन्होंने पूरा भागवत सुना नहीं है । राजा परीक्षित ने पूरी कथा सुनी है इसीलिए उन्हें उत्तम अधिकारी कहा है । पूरा न सुनने के बावजूद उद्धवजी और विदुरजी को श्रवण फल मिला है और भगवानमें भक्ति हुई है । श्रीमद्-भागवत के प्रत्येक स्कन्धरूप में भगवान ही हैं । उनके प्रत्येक अक्षर में भगवान ही क्रीड़ा करते हैं ।

नैमिषारण्य के श्रोता-वक्ता-ऋषियों और सूतजी का हीन अधिकार-विचार :

हीन अधिकार वाले श्रोता-वक्ता नैमिषारण्य में हैं । इस स्थल के देवता भगवान् विष्णु हैं । वे सात्त्विक हैं । वन भी सात्त्विक है । सात्त्विक स्थल में मन शांत, स्थिर और प्रसन्न रहता है । ज्ञान के लिए भी सात्त्विकता जरूरी है । ऐसे स्थल पर मन में मलिनता नहीं आती है । या आए हुए व्यर्थ और मलिन विचार जो आसुर बलरूप हैं, वे निमिष (आँख के पलक) मात्र में शांत हो जाते हैं - ऐसा स्थल नैमिषारण्य है । ऐसे स्थल पर मन की सभी वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, भटकता मन, स्थिर हो जाता है । ऋषियोंने तप करने की इच्छा से ब्रह्माजी की सूचना से यह स्थल ढूंढा । खुद का मन जहाँ स्थिर हो, व्यर्थ-मलिन विचार न आयें, संसार के व्यवहार में न खिंच जायें, घर निगल न जाये, ऐसे भगवत्-संबंधवाले स्थल पर कथा श्रवण सानुकूल होता है ।

ऋषि मंत्र-दृष्टा हैं । वे नैमिषारण्य में १००० वर्ष का सत्र कर रहे हैं । जिसका नाम सहस्रसम है । ब्रह्माजी के हजार वर्षके सत्रमें पहले प्रभु प्रकट हुए थे । ऋषि यह जानते थे इस कारण से अपने

यहाँ भी प्रभु प्रकट हों ऐसे मनोरथ से सत्र शुरु किया था। उनके वहाँ भगवान श्री भागवत कथा रूप से प्रकट हुए हैं। ऋषि स्वर्गलोक पाने की इच्छा वाले हैं। यह स्वर्ग यानी एक देवता अथवा लोकात्मक भगवान का आनंद-अंश। स्वर्ग का अर्थ आत्मसुख भी है। इस लंबे सत्र के बीच किसी की मृत्यु न हो इस कारण ऋषियों ने मृत्यु के भगवान को भी निमंत्रण देके बुला लिया था। ऐसे समर्थ ऋषियों का भी हीन अधिकार है। क्योंकि ये श्रोता ऋषि अपने वक्ता सूतजी से खुद को उत्तम मानते हैं। वे स्वयं शुद्ध ब्राह्मण माता पिता की संतान हैं। सूत हीन-विलोम-जाति के हैं। क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण माता की वे संतान हैं। वेद में ऋषियों का अधिकार है सूत का नहीं। इन ऋषियों के अनेक शिष्य भी हैं इस कारण गुरु होने का अभिमान भी है। अभिमान अधिकार में अवरोधक है। इन कारणों से, मृत्यु को रोक सकनेवाले, मंत्र-

दृष्टा, संयमी-संस्कारी, समर्थ-ऋषियों का भी हीन अधिकार है। सूतजी श्रीभागवत के शब्द मात्र को जानते हैं। उनको अर्थ और आशय स्पष्ट नहीं है, वैराग्य भी नहीं है। इस कारण से ऋषियों के वक्ता होने पर भी सूतजी का हीन अधिकार है। रोम-हर्षण सूत को कथा करते करते रोम-रोम में हर्ष होता था। उनको बलदेवजी ने अनजाने में मार दिया। उन्होंने कृपा करके उनके पुत्र को सामर्थ्य दिया। वो ये उग्रश्रवा-सूत हैं। ऐसों का हीन-अधिकार है तो आज के श्रोता-वक्ता, हम सब किस कक्षा में आते हैं ?

हीन-अधिकार श्रोता-वक्ता के लक्षण :

श्रीमद्-भागवत के श्रोता में कम से कम तीन योग्यताएँ होनी चाहिए।

(१) जिज्ञासा-जानने की इच्छा, विचार। (प्रश्नों को पूछने से यह समझ में आता है)

(२) अमात्सर्य-ईर्ष्या का अभाव। किसी की भी

अच्छी चीज देखकर संतोष होना, उसे प्राप्त करने का मन न होना, ईर्ष्या न होना इस तरह से समझा जाता है ।

(३) श्रवण में आदर - आदर पूर्वक सुनना । कठिन भाग को छोड़ न देकर समझने का प्रयत्न करना, श्रद्धा स्नेह पूर्वक सच्ची बात स्वीकारना इस तरह समझते हैं ।

वक्ता में भी कम से कम तीन लक्षण चाहिए ।

(१) गुरु परम्परा से श्रीमद्-भागवत पढ़ा या सुना होना चाहिए । शास्त्रीय तरीके से अध्ययन होना चाहिए ।

(२) श्रीमद्-भागवत के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान होना चाहिये ।

(३) अपनी बातें दूसरों की समझ में आएें, उनकी रुचि बढ़े, प्रभु में प्रीति हो ऐसी वाणी-चतुरता होनी चाहिए ।

इन शौनक वगैरह को हीन अधिकार में होने से

उत्तम फल प्राप्त नहीं हुआ है । फिर भी उनका किया हुआ श्रवण व्यर्थ नहीं गया है । उनको श्रीमद्-भागवत श्रवण से भगवान में निष्ठा हो गई है । अपने शास्त्र में संदेह-समाधान से दृढ़ता हुई है, निष्ठा हुई है । पर उनकी यज्ञकर्म में आसक्ति है । इससे कर्म द्वारा मोक्षफल की प्राप्ति हुई है । अधिकार जैसा भी हो श्रीमद्-भागवत सेवन कभी व्यर्थ नहीं होता है । सतत सादर श्रवण करने से लंबे समय बाद भी फल जरुर होता है । फलरूप भगवान की कथा से निष्फल कौन रह सकता है ।

मध्यम अधिकारी श्रोता-वक्ता के लक्षण :

मध्यम अधिकार में श्रोता-वक्ता विप्रर्षि व्यासजी और देवर्षि नारदजी हैं । दोनों ही भगवद् अवतार हैं फिर भी उनका मध्यम अधिकार है ! दोनों को शास्त्राधिकार है । व्यासजी को अपनी उत्तमता का ज्ञान है, शिष्य संग्रह है और अन्य साधन परायणता भी है । दोनो में वैराग्य कम है । व्यासजी स्वतः

तत्त्व का निर्णय कर सकते हैं । नारदजी को हरि गुण गाते समय चित्त में प्रभु के दर्शन होते हैं । फिर भी दोनों का मध्यम अधिकार है । जैसे जैसे वैराग्य-वैसे वैसे श्रीमद्-भागवत में अधिकार । इसमें श्रोता वक्ता के समान तीन लक्षण है । (१) भगवत्कृपा (२) भगवदीयत्व (३) भगवदेकत्व

हीन-अधिकार वालों के तीनों लक्षणों के अलावा इन तीन की मध्यम अधिकार में ज़रूरत है ।

उत्तम अधिकारी श्रोता-वक्ता के लक्षण :

उत्तम अधिकार में हीन और मध्यम अधिकार के लक्षण के अलावा दृढ़ वैराग्य जरुरी है । एम.ऐ. तथा बी.ऐ. वाले को मेट्रिक होना ही पड़ता है । यहाँ श्रोता राजा परीक्षित और वक्ता भगवान श्री शुक हैं । दोनों में दृढ़ वैराग्य है । भगवान में एकतान होने से दृढ़ वैराग्य होता है । श्रीशंकररूप शुक का वैराग्य तो सिद्ध प्रसिद्ध है । श्रीभागवत के प्रचार के लिए श्रीकृष्ण ने उनको प्रकट किया है । निर्गुण में परिनिष्ठ शुकदेवजी

उत्तम-श्लोक भगवान की लीला से रसवश हो गए हैं । लीला ने उनका चित्त पकड़ लिया । जन्म के साथ ही पिता के आश्रम को छोड़कर जानेवाले-लीला रस के आकर्षण से स्वतः वापिस पधारे हैं । विधिपूर्वक अपने पिता श्रीव्यासजी से वे श्रीमद्-भागवत पढ़े हैं । परमहंस दशा में परीक्षित की सभा में प्रकट होकर कथा की है । परीक्षित राजा खुद को श्रीशुकसे उत्तम नहीं मानते, उनके शिष्य भी नहीं है । बाल्यावस्था से ही भगवानकी कथा का सेवन उन्होंने किया है, ऐसे ही खेल खेले हैं । माँ के गर्भ में ही भगवान के दर्शन उनको हुए हैं । वे भगवान को सबमें ढूंढते हैं, परीक्षा करते है - भगवान में उनकी प्रीति है । पहले से ही उनके हृदय में इस लोक-परलोक के सुखों का वैराग्य था । शाप के कारण से वह बाहर प्रकट हुआ । राज्यादि छोड़कर, अन्नजल छोड़कर गंगा किनारे आकर बैठ गए हैं । उन्होनें श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को सर्वाधिक माना है । कथा श्रवण की उन्हें तीव्र इच्छा

है । इसी कारण उनका वैराग्य दृढ़ है । भगवान् श्रीशुकदेवजी और राजा परीक्षित के संवाद से श्रीमद्-भागवत का प्रचार है । ज्ञानावतार व्यासजी और शिवावतार श्रीशुकदेवजी द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने भक्ति के विजय-ध्वज की स्थापना की है और उसे लहराया है । सभी को निष्ठा सहित, प्रयत्न पूर्वक, नियम बद्ध होकर, अन्य किसी आशा बिना, मात्र भगवत् प्रीति के लिए, अर्थानुसंधान रखकर, श्रीमद्-भागवत का नित्य सेवन करना चाहिए ।

महाप्रभुजी श्रीवल्लभाचार्यजी के प्रकट किये हुए, यथार्थ गूढार्थ का निर्देश :

श्रीमद्-भागवतजी के सच्चे अर्थ करना अत्यंत कठिन है । वाणी के पति अग्निदेव के बिना दूसरा कोई संपूर्ण यथार्थ प्रकट करने में समर्थ नहीं है । खुद को जिसकी पूर्णरूप से समझ न हो वो दूसरे को किस तरह समझाए । भगवान के मुख-कमलरूप वैश्वानर-आधिदैविक अग्नि का ही यह सामर्थ्य है । वाणी अपने पति अग्नि को अपना स्वरूप प्रकट दिखाती है । रसात्मक श्री भगवान कृष्ण ने अपने मुखरूप वैश्वानर को सन्मनुष्याकृति-रूप से प्रकट किया । श्रीमद्-भागवत के रसात्मक यथार्थ गूढार्थ प्रकट करने की आज्ञा की । पूर्ण ज्ञान-अवतार व्यासजी को प्रकट करके भगवानने श्रीमद्-भागवत रूप से अपनी लीलाएँ प्रकट करने की आज्ञा दी । श्रीमद्-भागवत और उसके गूढार्थ दोनों भगवद्-आज्ञा से प्रकट हुए हैं । श्रीमहाप्रभुजी ने पहले श्रीमद्-भागवत पर सूक्ष्म टीका प्रकट की । जिसके थोड़े भाग अभी मिलते हैं । भगवान ने विशेष कृपा की । महाप्रभुजी ने इससे श्री सुबोधिनी जी प्रकट कीं । उसमें श्रीमद्-भागवत के (१) वाक्यार्थ (श्लोकार्थ) (२) पदार्थ (शब्दार्थ) और (३) अक्षरार्थ हैं ।

“तत्वार्थदीपनिबंध:“ में शास्त्रार्थ, स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ और अध्यायार्थ कहे हुए हैं । इसी निबंध के शास्त्रार्थ प्रकरण में सभी शास्त्रों का निर्धार स्पष्ट

किया है । उसे गीतार्थ भी कहते है । उसका विस्तार इस निबंध के सर्वनिर्णय प्रकरण में है । इस निबंध के भागवतार्थ प्रकरण में भागवत जी के शास्त्र, स्कंध, प्रकरण और अध्याय के अर्थ स्पष्ट किये हुए हैं । इस निबंध के अर्थ समझकर श्री सुबोधिनी जी के अर्थ समझने चाहिए । यह गूढ़ार्थ भगवदाज्ञा से दैवी जीवों के उद्धार के लिए हर्ष से प्रकट किये हैं । इन सात अर्थों की लीला कर्ता भगवान ने इच्छा की और लीला दृष्टा व्यासजी ने उन पर विचार किया । उन दोनों को यह गूढ़ार्थ प्रिय है । महाप्रभुजी ने पहले तीन स्कंध के सुबोधिनी जी प्रकट किये । फिर भगवान लीला में श्रीमहाप्रभुजी के विना विकल हुए, श्रीगोवर्धननाथजी-रूप से स्वयं प्रकट होने पर भी महाप्रभुजी को देश-देह और लोक प्रसिद्ध परित्याग की आज्ञायें क्रमशः कीं । सेवक को तो स्वामी की आज्ञा का पालन करना होता है । पहली दो आज्ञा होने के बाद

श्रीमहाप्रभुजी ने भगवान के हृदय रूप दशम स्कंध के श्री सुबोधिनी जी प्रकट किये । ग्यारहवे स्कंध, पाँचवें अध्याय, दूसरे श्लोक तक के श्री सुबोधिनीजी मिलते हैं उसके बादके नहीं । इस तरह चार से नौ स्कंध, ११वे स्कंध का शेष भाग और १२वा स्कंध प्रकट नहीं किये हैं ऐसा लगता है । तत्वार्थदीप-निबंध और श्रीसुबोधिनीजीके अर्थों को स्पष्ट करती हुई अनेक व्याख्यायें उपलब्ध है । श्री गुसाँईजी की “टिप्पणी”, श्री पुरुषोत्तमजी का “प्रकाश”, श्री वल्लभजीका ‘लेख’, श्रीलालूभट्टजी की ‘योजना’, श्री निर्भयरामजी का “कारिकार्थ” और अनेक वल्लभवंशजों व अनेक विद्वानों के स्वतंत्र उल्लेख प्राप्त होते हैं । आज भी अनेक ग्रंथ-लेख की रचना होती है । यह सब साहित्य श्रीमद्-भागवत के अर्थ समझने में उपयोगी है ।

जिज्ञासु ऋषियों के छः प्रश्न :

श्रीमद्-भागवत के पहले अध्याय में जिज्ञासु

ऋषियों ने छः प्रश्न भागवतज्ञ सूतजी से पूछे ।

(१) मानवमात्र का कल्याण क्या है ?

(२) प्रभु प्रसन्न हों जायें ऐसा सार रूप श्रवण करने योग्य क्या है ?

(३) कृष्णावतार का प्रयोजन क्या है ?

(४) भगवान की कौन सी लीलाएँ हैं ?

(५) भगवान की अन्य अवतार-कथायें कौन सी हैं ?

(६) भगवान के स्वधाम पधारने के बाद धर्म किसकी शरण में गया ?

इन छः प्रश्नो का सामान्य उत्तर पहले स्कंध के दूसरे, तीसरे अध्यायों में संक्षिप्त में है और संपूर्ण रुप में उत्तर श्रीमद्-भागवत रूप से विस्तार में है ।

सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है - कृष्ण :

कृष्ण-कथा श्रवण का साधन क्रम :

सभी के कल्याण रूप फल कृष्ण ही हैं । सभी प्राणियों को लौकिक-पारलौकिक फल देने वाले भी कृष्ण ही हैं । कृष्ण ही सर्व-सार-रूप श्रवण योग्य हैं । भक्ति-मुक्ति का प्रदान-लीला करने के लिए कृष्ण का अवतार हुआ है । सभी अवतार-लीला कृष्ण की ही हैं । धर्मरक्षक भी कृष्ण ही हैं । इसी कारण सभी प्रश्नों का उत्तर कृष्ण ही हैं । कृष्ण संबंधी प्रश्न भी आत्मा रूप कृष्ण को प्रसन्न करता है । अंतःकरण भगवान या भगवान के आवेश से प्रसन्न होता है । जब प्रश्न से ही इतनी प्रसन्नता होती है तो उसके उत्तर से क्या नहीं मिल सकता है ? कथा जिससे संभव होती है उस लीला से क्या नहीं मिल सकता ? इन लीला करनेवाले कृष्ण से क्या नहीं मिल सकता ? जीवन में भी खड़े होने वाले सभी प्रश्नों का, सरल, सफल, संपूर्ण सच्चा उत्तर है- कृष्ण । कृष्णकथा सुनकर अपने घर में बिराजने वाले कृष्ण की सेवा करे उसे क्या नहीं मिल सकता ? कृष्णं स्वतः पुरुषार्थरूप हैं, कृष्ण-सेवा-कथा भी स्वतः पुरुषार्थ रूप हैं । यथार्थरूप

अपना धर्मपालन करने के बावजूद भगवान की कथा में प्रीति न हो तो वह धर्मपालन केवल श्रम है । धर्म तो साधन है । जिसका फल भक्ति है। स्वधर्म पालन से अंतःकरण शुद्ध होता है । अंतःकरण शुद्ध होने के बाद वेद श्रीभागवत वगैरह सत्प्रमाण में श्रद्धा होती है, उनके अर्थ का मनन होता है, फिर निदिध्यासन (निरंतर-चिंतन) से साक्षात्कार जैसा ज्ञान होता है । इससे विषयों में वैराग्य होता है, फिर उनसे श्रवण आदि साधन भक्ति होती है । फिर परमभक्ति होती है, जिससे हृदयमें-बाहर सभी जगह पर भगवत् साक्षात्कार होता है । जैसे जैसे श्रीमद्-भागवत का श्रवण बढ़ता जाए वैसे वैसे भक्ति उत्पन्न होती है, स्थिर होती है, बढ़ती है और फलती है।। जिससे जीवन सफलता मिलती है । जीवन लाभ है - तत्त्व-जिज्ञासा । इस तत्त्व को वेद (श्रुति) में ब्रह्म कहा है : गीता, स्मृति में परमात्मा, कहा है : पुराण में भगवान् कहा है : और श्रीमद्-भागवत में

उसे स्वयं भगवान् : यह तीनों शब्द अलग हैं । एक ही तत्त्व के तीन अलग नाम है ।

भगवान द्वारा रचित त्रिविध जीवो :

सबके हित के लिए सच्ची प्रवृत्ति :

इस ब्रह्म की एक में से अनेक रूप होकर लीला करने की इच्छा हुई । और वे अपने सामर्थ्य से अपने स्वल्पांश से ऐसे हुए । लीला में विविध रस प्रकट करना चाहा । लीला विचित्रता के लिए ऊँचनीच रूप भी खुद प्रकट किये । अपने मन से जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ऐसे विश्वरूप से भगवान प्रकट हुए । उन्होने विश्व रचा - खुद विश्वरूप बने । इन सच्चिदानंद ब्रह्म ने अपनी इच्छा से सदंश में से जड़ पदार्थ उत्पन्न किये । चिदंश में से जीव प्रकट किये और आनदांश में से वे सबके अंतर्यामी हुए । इन तीनों रूप से भगवान् ही क्रीड़ा करते हैं । उनमें अपनी मर्जी से जीने वाले, शास्त्रानुकूल जीनेवाले, और भगवान के सानुकूल जीनेवाले लोग (जीव) प्रभुने

बनाये हैं । शास्त्र में वे क्रमशः, प्रवाह - मर्यादा - पुष्टि - सृष्टि रूप से प्रसिद्ध हैं । सभी संग-प्रसंग में भटकनेवाले, ऐश-आरामी, इन्द्रियाराम, कहीं भी स्थिर रुचि बिना के जीवों को चर्षणी कहते हैं । सबको योग्य फल मिले, पुरुषार्थ प्राप्त हो इस कारण से भगवान ने अपने निःश्वास में से वेद प्रकट किये । कलियुग में सामान्य बुद्धिवालों का भी कल्याण करना भगवान ने चाहा । अपनी ज्ञानकला को अवतार दिया जो हुए महर्षि वेद व्यासजी । उन्होंने एक हो गए वेद के व्यवस्थित विभाग प्रसिद्ध किये । सर्वजन का हित सोचा । वेद में अधिकार न रखनेवाले स्त्री, शूद्र का भी हित सोचा । महाभारत में उन्होनें वेदार्थ बुन लिया । व्यासजी की यह सच्ची-समाज-कल्याण सेवा है । धन की सुविधा तो दूसरे भी कर सकते है । धर्मप्रचारकों को तो लोगों के मन को शुद्ध करना चाहिये । उन्हें दृढ़-सन्मुख करना चाहिए, जीवन कल्याण करना चाहिए । कृष्ण बिना तो कल्याण कहाँ

से हो सकता है । इस कारण समाज को कृष्ण-मति, कृष्ण-रति, कृष्ण-गति देनी चाहिए । स्कूल-कॉलेज-अस्पताल-सदाव्रत वगैरह कहे जाते हुए परोपकार जन सेवा,(?) तो जरूरी होने के बावजूद धर्म के एक - चरण - दया का अंश है । महर्षि व्यासजी ने तो सच्ची जन हित की दिशा दिखाई है,- “सभी का कल्याण हो ऐसा सदा करो” ।

व्यासजी-नारदजी पर प्रभु कृपा :

सत्संग करने-कराने वाले सत्पुरुषों के धर्म :

योग-सेवा सेवा से भी उत्तम योगेश-सेवा :

यह सच्ची समाज कल्याण सेवा करने से भी सत्पुरुषों को संतोष नहीं हुआ । मनमें कमी महसूस होने लगी । कमी चुभने लगे - तो भगवान ने कृपा की ऐसा समझना चाहिये । कृपा से तो भक्तसमागम मिलता है । जीवन में जिसकी कमी हो वह मिलता है । जीवन में कल्याण की कमी हो, उसकी चुभन

हो, जिससे शोध शुरू हो, शोध में मन हो, प्रभु का दृढ आश्रय हो, तो जिसकी शोध होती है वह सामने से आकर मिलता है । भक्त की ज़रुरत पहले से ही भगवान तैयार करके रखते हैं । यह भक्ति-मार्ग का गौरव है । भगवान ने व्यासजी को घर बैठे ही अपने भक्त नारदजी से मिलवा दिया । नारदजी से व्यासजी ने अपने आप में कमी पूछी । व्यासजी ने सर्व विशेषज्ञ होते हुए भी अपनी न्यूनता स्वीकारली । नारदजी ने पूर्वजन्म की नहीं, अपनी पूर्वसृष्टिकी कथा सुनाई । अपनी अनुभव कथा कही । खुद दासी के बेटे थे । वेदवादी शुद्ध ब्राह्मणों के शुद्ध भोजन से उनका पोषण हुआ । पोषक अन्न-द्रव्य शुद्ध हो तो मन शुद्ध होता है । शुद्ध होने पर स्थिरता आती है । प्रभु कृपा होती है । सत्पुरुषों की सेवा मिलती है । निष्ठा से सत्पुरुषों के लिये कार्य करने से, जन्म मरण के धक्के खाने नहीं पड़ते । सत्संग या सेवा करनेवाले में तीन दोष नहीं होने

चाहिए । (१) चंचलता, (२) विषयलालसा, (३) स्व-सुख यत्न - स्वार्थ वृत्तिः या वैसा साधन संग्रह ।

उसमें चार गुण होने चाहिए :

(१) दीनता (नम्रता) । (२) दूसरे के सानुकूल होने का प्रयत्न । (३) सेवा और श्रवण की तीव्र इच्छा । (४) कम और मधुर बोलना ।

सत्संग या सेवा योग्य सत्पुरुषों में भी तीन धर्म होने चाहिए :

(१) निरपेक्षता (२) संग-निवृत्ति (३) भगवान का चिंतन

नारदजी दासी के बेटे में से सेवा-सत्संग, भगवद् गुण-गान के प्रभाव से ब्रह्माजी के पुत्र हुए । दुःखी लोगों के दुःख दूर करने का और कोई यथार्थ उपाय नहीं है । ज्ञानी भगवान को जानना चाहता है । भक्त भगवान का अनुभव चाहता है । दुःखी अपने दुःख दूर करना चाहता है । इन तीनों के लिए सही उपाय है, भगवान के चरित्र-गुणगान ।

जिसके श्रवण से भगवान अंतःकरण में पधारते हैं और सेवा भावना होती है। श्रवण पश्चात् सेवा करने से सफलता मिलती है। लौकिक काम जलाता है, कुचलता है, लोभ ललचाता है, डुबाता है, खींचता है, जिससे क्रोध बाहर भभूकता है, बारंबार इस तरह विकलता होती है। जिससे अंतःकरण मृतप्राय हो जाता है। उसके लिए तो मुकुंद सेवा संजीवनी है। मुकुंद तो मोक्षदाता हैं मृत-संजीवक हैं। इन मुकुंद की श्रवण-सेवा से मृतः अंतःकरण को नवजीवन मिलता है। यह साक्षात् अनुभव होता है। सेश्वर योग से भी यह विलंब से होता है। योग सेवा करने से तो योगेश सेवा उत्तम है। इस तरह नारदजी ने व्यासजी को भगवान की लीला दर्शन करने को समझाया। जिसके लिए समाधि करने का भगवान का प्रादेश सुनाया और विदा हुए।

व्यासजी का समाधि दर्शन - सात्वत संहिता :

व्यासजी ने भक्ति योग समाधि की-जिसमें

पूर्णपुरुष भगवान के दर्शन किये। भगवान के आश्रयवाली माया को देखा। भगवान के अंशरूप जीव में माया से होता अनर्थ देखा। जिसमेंसे छूटने के उपाय रूप मर्यादाभक्ति और पुष्टिभक्ति देखी। भगवान की लीला के भी दर्शन किये। उसे वर्णन करते हुए शब्द का स्फुरन भी उनको समाधि में हुआ। कलियुग में सबका कल्याण करने की कामना से, सचोट-सरल-सफल उपाय रूप यह सात्वत संहिता-वैष्णव वेद-श्रीमद्भागवत दी। समाधि में उन्होंने एक साथ सभी लीला का दर्शन किया। जिसका यथा-योग्य क्रम करके उसके बारह स्कंध करके उन्होंने श्रीशुकजी को पढ़ाए। श्रीशुक तो निवृत्ति-निरत हैं। वक्ता का यदि प्रवृत्ति स्वभाव हो तो इस दोष से यह संहिता भक्तिजनिका न हो सके। विषयावेश हो तो विष्णु का आवेश नहीं होता है, विष्णु का आवेश हो तो विषयावेश नहीं होता है। भगवान के गुणों के प्रभाव से श्री शुक

की वृत्ति भगवान के वश हो गई । आकर्षण से अनन्यता आ गई । श्री शुक ने आदर पूर्वक भागवत पढ़ी है ।

शरणागत वत्सल भगवान् :

भारत का अद्भुत विज्ञान :

भगवान की महिमा को स्पष्ट समझाने वाली पांडवो पर की, भगवान की कृपा की नैमित्तिक कथा, सूतजी ने कहना आरंभ किया । महाभारत के युद्ध में पाण्डव विजयी हुए । यह प्रभाव था कृष्ण कृपा का । दुर्योधन रण में मारा गया । धृतराष्ट्र का पुत्र है न ? पराये का जबरदस्ती हड़पकर पुत्रों का पोषण करने से उनका पतन ही होता है । अश्वत्थामा ने उसका प्रिय करना चाहा । सत्ता और संपत्ति की शरम विवेक भी भुलवा देता है । उसने द्रौपदी के सोते हुए पाँच बेटों को मार डाला । द्रौपदी को खुश करने के लिए अर्जुन बैर लेने

गया । अधूरे ज्ञान वाले अश्वत्थामा के योजित ब्रह्मास्त्र को नहीं पहचान पाया । संकट में श्री कृष्ण की शरणागति की । शरणागति सरलता से सफलता देती है । भगवान ने तो स्त्रीभक्त अर्जुन को भी अपना सखा गिनकर विजयी बनाया है । अपने शरणागत की रक्षा भगवान स्नेह से करते हैं । शरण में जानेवाले को शांति मिलती है । भगवान शरणागत-वत्सल हैं । अर्जुन को ज्ञान दिया - ब्रह्मास्त्र के सामने ब्रह्मास्त्र चलाया - प्रजा को दुःखी देखकर दोनों ब्रह्मास्त्र वापस खींच लिये । यह था भारत का विकसित विज्ञान । अपने व शत्रु के आणविक शस्त्रों को वापस खींच लें वैसा अद्भुत विज्ञान भारत का था ।

अर्जुन अश्वत्थामा को बाँध कर शिबिर में लाया । अपने पाँच पुत्रों को मारने वाले शत्रु को भी भक्त द्रौपदी जी ने गुरूपुत्र गिना । आदर से छोड़ देने को कहा । भीम ने उसे मारने को कहा ।

श्रीकृष्ण ने समाधान किया । अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा के सिर का मणि निकलवाकर अश्वत्थामा को निकाल दिया । भक्त को ब्राह्मण-वंध के दोष में से बचाया और प्रतिज्ञा भी पूरी करवाई । अपमानित अश्वत्थामा ने पाण्डवों का वंश न रहे ऐसी इच्छा करके, वापस बुलाया न जासके ऐसा ब्रह्मास्त्र भेजा । उत्तरा के गर्भ का नाश सोचा । दुःखी उत्तरा ने यह देखकर कृष्ण की शरणागति की । कृष्ण ने कृपा की । कृष्ण की शरण में जानेवाले को संकट रहता नहीं है । शरणागत का परिपालन यह भगवान की प्रतिज्ञा है । शरणागत को सभी प्रकार के भय में से भगवान अभय देते हैं ।

भगवान की शरणागति और स्तुति

शुद्ध हृदयवाले भक्तों की स्वाभाविकता :

सच्चा धार्मिक :

उत्तरा की गर्भ-रक्षा करते हुए कृष्ण को कुंता बुआ ने देखा । करुणा समझ में आई । जिसे भतीजा माना था, वह भगवान निकला । सुख के समय में भी बुआ ने शरणागति की-स्तुति की । स्वांतः शुद्ध हो तो शरणागति संभव है । दुःख तो कृष्ण दर्शन देनेवाला है । स्वानुभव से यह कुंता जी की समझमें आया है । इसीलिए तो उन्होने सतत दुःख मांगा है । कृपा से मिले हुए दुःख कृतार्थ करते हैं, सम्मुख रखते हैं । कर्म से मिले हुए दुःख दुनिया में घुमाते हैं, विमुख बनाते हैं । कुंताजीने स्नेह स्वजन के बदले प्रभु में हो-ऐसी प्रार्थना की । खुद सुखी किये हुए संतान अपने को सुख दें ऐसी इच्छा भी उलझन भरी है, उलझाती रहती है । श्रीकृष्ण में स्नेह करने वाला ही सुखी है । धर्मराज युधिष्ठिर राजा हुए-फिरभी उनके मन में शोक था । अपने कारण से कोई और दुःखी हो ऐसा सच्चे धार्मिक से सहन नहीं होता है । स्वार्थ वश मैंने सबको संताप कराया, ऐसा उसे लगा । राज्य मिला पर खुश नहीं हुए । इस शोक को शांत करने के लिए भगवान सबको भीष्म दादा के पास ले आए । दादा भीष्म सर्व

धर्मज्ञ हैं । उनको भगवान ने धर्म जानने के बावजूद अधर्म के पक्ष में रहनेवाला नहीं कहा । दोष वालों में से भी गुण ढूँढकर आदर होना चाहिए यह जीवन कला है जो कृष्ण ने सिखाई है । भीष्म जी ने सब धर्म समझाए । सर्व धर्म के साररुप आत्मनिवेदन भगवान को किया । उपदेश आचरण से दृढ़ होता है । भगवान को सर्वसमर्पण से क्या नहीं मिलता है । अपराधी भीष्म को भगवान ने मुक्ति ही ।

युधिष्टिर तो धर्मराजा हैं । मुख्य-धर्म तो कृष्ण सेवा है । मन कृष्ण में रहने से और कोई स्पृहा नहीं रहती । धर्म जहाँ होता है वहाँ सुख सुलभ है । अधर्म आने से दुःख आते हैं । धर्मराज्य में सभी सानुकूलता थी । स्वजनों को सुखी करके प्रभु द्वारका पधारे । कुरु नारियों को दर्शन मात्र से ज्ञान दिया । उन्होंने यथार्थ स्वरूप को समझाती हुई स्तुति की । द्वारका की प्रजा ने प्रभु का प्रेम से स्वागत किया, स्तुति की ।

उत्तरा ने शरणागति की - जो गर्भ के बालक को भी फलित हुई । जन्म से पहले माँ के गर्भ में ही परीक्षित को भगवान के साक्षात् दर्शन हुए । भगवान की रक्षा होने से विष्णुरातः-गर्भ में दिखे हुए की सर्वत्र परीक्षा करें और उसकी शोध करें इसीलिए परीक्षित नाम हुए । यह कृष्ण-कृपा ऋषि मुनियों को भी दुर्लभ है । शरणागति से वो सुलभ हुई है । ऐसे भक्त की मुक्ति में विघ्न न हो, इसलिये उदार भगवान ने ढोंगी धृतराष्ट्र का भी उद्धार कर दिया । भक्त विदुरजी को प्रेरणा देकर उनके पास भेजा है । भगवान की कृपा से ही भक्त मिलते हैं । भक्त की कृपा से तो भगवान भी मिलते हैं । ढोंगी-दम्भी-अन्यायी-प्राण लेने के लिए तत्पर धृतराष्ट्र को भी, पिता के स्थान पर गिनकर नित्यवंदन करने धर्मराज युधिष्टिर सबेरे जाते हैं । सच्चा धार्मिक “जैसा के साथ तैसा“ नहीं करते हैं । स्वधर्म को दुःख न हो ऐसा सोचकर वह लोगों का उद्धार करता है । राग

या द्वेष से नहीं । वह कभी क्लेष नहीं करता है । पांडवो को अर्जुन द्वारा कृष्ण के स्वधाम पधारने के समाचार मिले । उनकी सभी सफलता कृष्ण शरणागति और कृपा से मिली थी ऐसा उनको स्पष्ट समझ में आया । गीता के स्मरण से शांत हुए ।

पाण्डवों ने सोचा अब कृष्ण सेवा उनको नहीं मिल सकती । सेवा बिना तो शरीर सत्ता-सुंदरता-स्वजन-सम्पत्ति भी क्या काम के ? परीक्षित को राज्य देकर विदा हुए-मुक्त हुए ।

दो पीढ़ियों के बीच में आदर्शों की एकता :

राजा होने के बाद परीक्षित भक्त-ज्ञानी-ब्राह्मणों की सलाह से राज्य करते थे । जबतक पूर्वज हों तब तक उनको सुख हो इस तरह आदर देकर जीना चाहिए । अपने विचारों से विरोध नहीं करना चाहिए । सच्चे और अच्छे होने के बावजूद ऐसे विचारों को व्यक्त करके शांत हो जाना चाहिए । युवकों के ऐसे विचारों को यदि बड़े सुनें और आदर

दें तो संधर्ष नहीं होता है । जहाँ स्नेह-समझ और सहनशीलता की त्रिवेणी हो वहाँ सुख और शांति अपने आप आते हैं । वृद्ध और युवक सभी सच्चा स्वीकारने की उदार दृष्टि से जियें तो परस्पर का क्लेश-लेश भी नहीं रहता है । दोनों को ऐसा लगता है कि वे ही सच्चे और अच्छे हैं इसीलिए संधर्ष होता है । सही तो वह है जो स्वशास्त्र ने कहा हो । वृद्ध और युवक स्वशास्त्र के अनुसार जियें तो,- सिद्धांत अनुसार आचार विचार रखें तो,- शास्त्र मार्ग से शांति सुख सफलता सुलभ होती है । परिवार के आदर्शों की एकता जीवन मे एकता लाती है । आज शास्त्र है, मार्ग है, वृद्ध हैं, युवक हैं । फिर भी शास्त्र मार्ग पर चलनेवाले कहाँ हैं, कितने हैं ? बहुत ही कम हैं न ? इसीलिए ही तो बहुत ही कम को शांति सुख-सफलता मिलती है । ज्यादातर लोग परस्पर क्लेश द्वेष में ही जीवन व्यतीत करते हैं न ? वर्णाश्रम धर्म तो ऋषियों ने

कौटुंबिक क्लेश टालने के लिए वृद्ध और युवको दोनों को स्वविचारों से स्वतंत्र जीने के लिए, जीवन का अनुभव करने के लिए दिया है ।

धर्म के चार चरण-आचरण में जरूरी हैं :

क्लेश के पाँच स्थान :

राजा परीक्षित ने अधर्म को रोका-सद्धर्म को बढ़ाया । दुष्टों को दबा दिया । शिष्टों को सन्मान दिया । गाय और बैल के रूप में पृथ्वी और धर्म को देखा । उनको दुःख में से छुड़ाने के लिए कलि का निग्रह किया । पृथ्वी पर रहनेवाले का क्ल्याण धर्म से होता है । कलि-क्लह-क्लेश रूप है, जो धर्म में विघ्न करता है - उसे पीड़ा पहुँचाता है । परीक्षित ने धर्म को स्थिर किया - जिसके चार चरण हैं- (१) तप : स्वशास्त्र समझाकर कल्याण के लिए कष्ट सहन करना, (२) शौच : तन मन की पवित्रता, (३) दया : दुःखी के दुःख दूर करने की कामना-प्राणी मात्र के कल्याण के लिए करुणा, (४) सत्य : वाणी, विचार, वर्तन को शास्त्रानुकूल रखना ।

ये चार आचरण में हों तो ही धर्म जीवन में स्थिर होकर फलित होता है । इन चार बिना तो धार्मिक क्रिया करते हुए भी धर्म नहीं हो सकता । ये चार धर्म के चरण हैं, उसकी नींव है । नींव बिना मकान कैसे टिक सकता है । परीक्षित ने लोगों के आचार में इन चार का स्थापन किया ।

कलह रूप कलि को भी पाँच स्थान दिये ।

(१) अनृतरूप द्यूत (जुआ, हारजीत के खेल लॉटरी-वगैरह)

(२) मदरूप पान (मद्य, चाय, धूम्रपान, वगैरह कैफी नशीले पदार्थ)

(३) कामरूप स्त्री (सामान्य, पति और प्रभु में जो परायण न हों)

(४) क्रोधरूप हिंसा (किसी को कोई भी तरीके

से पीड़ा देना)

(५) वैररूप स्वर्ण (अयोग्य तरीके से प्राप्त किया हुआ)

इन पाँच के सेवन से जीवन वन जैसा विकट हो जाता है । सुख और शांति स्वप्न जैसे हो जाते हैं । समझदार को इन पाँच से दूर रहना चाहिए धर्मशील, राजा, लोकनेता, गुरुजनों को तो इनसे विशेषतः दूर रहना चाहिए ।

कृष्ण सेवा को सर्वोत्तम समझ कर-परीक्षित का गंगा किनारे पर प्रायोपवेश :

एक बार राजा परीक्षित शिकार पर गये । भक्त राजा की बुद्धि पैर में गिरे हुए कलि के स्पर्श से तामसिक हो गई । इसी कारण राजा ने ऋषि का अपराध किया । गले में मरा हुआ साँप डाल दिया । ऋषि का किया हुआ अपराध तो शांति मिलने देता नहीं है, उद्धार नहीं होने देता है । ऋषि कुमार ने सातवें दिन तक्षक नाग के दंश से राजा जल जाए

ऐसा शाप दे दिया । राजा ने यह जाना और उनके हृदय में रहा हुआ वैराग्य बाहर प्रकट हो गया । कृष्ण की चरण सेवा ही जीवन का परमफल है ऐसा समझाकर अपने पुत्र जन्मेजय को राज्य दे दिया । सेवार्थ समय न बिगड़े इस कारण अन्न जल छोड कर वे गंगा किनारे आए । गंगाजल में भगवान की चरण रज विशेष है । भगवान की चरण रज सेवा में उपयोगी शरीर देती है । राजा के पास सर्वज्ञ ऋषि आए । राजाने भक्त गंगाजी और ज्ञानी ऋषियों की शरणागति की और दो बातें पूछी ।

(१) जीवन की कृतार्थता के लिए क्या करना चाहिए ?

(२) मृत्यु करीब हो तो क्या करना चाहिए ?

तब वहाँ भगवान श्री शुकदेव जी प्रकट हुए । राजा ने उनका स्वागत करके मधुर वाणी में प्रश्न पूछे । भगवान व्यास-पुत्र ने उत्तर शुरु किया । राजा के ऊपर कृष्ण-कृपा हुई । कृष्ण-कृपा बिना तो

सच्चा सत्संग नहीं मिलता-फलित नहीं होता। प्रभुकी महिमा का यथार्थ ज्ञान करवाकर, प्रभु में प्रेम कराए, और बढ़ाये, प्रभु प्रसन्न हों ऐसा जीवन बनाए, प्रभु प्राप्ति कराए, यही सच्चा सत्संग है।

प्रकरण विभाग :

पहले स्कंध में साधारण (अ.१-९), असाधारण (अ.१०-१८) और गुणातीत (अ.१९) ऐसे तीन प्रकरण हैं।

द्वितीय-स्कंध सार :

कथा श्रवण से कृतार्थता :

भगवान् श्रीशुकने,- शरणागत, जिज्ञासु, दीन राजा पर दया की। कथा कृष्ण की सुनाई। व्यर्थ सुनने जैसा तो बहुत है। जीवन उसमें व्यर्थ बीतता है। कीमती यौवन उसमें या धन कमाने में, या भोग में बिताने के लिए नहीं है। जीवन में कृतार्थ होने के लिए तो, सर्वत्र सर्वदा बिराजनेवाले दस-लीला-युक्त

आनंदमय कृष्ण का श्रवण कीर्तन और स्मरण, जरुरी है। जबसे संसार का भय लगे तबसे इसे शुरु कर देना चाहिए। प्रगाढ़ प्रेम उससे होता है। प्रभु प्रकट होते हैं। उनमें प्रवेश मिलता है और अभय सिद्ध होता है। मृत्यु नज़दीक हो तो उलझन में नहीं गिर जाना चाहिए। विश्व को विभु रूप से समझाने वाली धारणा करनी चाहिए। भगवान निर्दोष हैं जगत उनसे अलग नहीं है। तो दोष किसके देखें? ऐसे दर्शन से दोष दृष्टि दूर होती है। ह्रदय निर्दोष होने से भगवान के आनंद का अनुभव होता है। आनंदमय भगवान् का फिर ह्रदय में ध्यान होता है। मोक्ष उससे सुलभ होता है। भगवान ने जिन देवताओं को जो अधिकार दियें हों वे उतना ही दे सकते हैं-दूसरा या अधिक नहीं। तीव्र भक्ति योग से भगवान का भजन करने पर सब कुछ सुलभ, हो जाता है। भगवान स्वयं दुर्लभ नहीं रहते हैं। भजन करनेवाले को तो दो ही प्राप्त करने जैसे हैं -

(१) भगवान में अचल भाव

(२) भगवद् भक्त का संग

यह दोनों होते हैं कथा प्रीति से । भगवान के भजन में उपयोग न देनेवाली इंद्रियाँ तो अवरोध रूप हैं । भगवान के चरित्र नाम सुनकर जो अंतःकरण पिघलता नहीं, आँसु रूप से उभरता नहीं, रोमांच रूप से अनुभव नहीं देता, प्रभु के साथ प्रेम नहीं कराता, वह हृदय तो लकड़ी, लोहा, पत्थर है । राजा ने प्रसन्नता से प्रश्न पूछे । स्वय के लिए कथा हुई है ऐसा उनको लगा । प्रसन्न शुकदेवजी ने भगवान की स्तुति की-व्यास जी को वंदन किया । स्तुति से प्रभु प्रसन्न होते हैं । प्रभु प्रसन्नता तो जीवन सफलता है । श्रीशुकदेवजी ने ब्रह्मा-नारद संवाद कहा । भगवान की विश्व रचना की लीला कही । विश्व में विहार करने वाले विभु की विशेष अवतार कथा कही । परीक्षित ने शंका-की शुकदेवजी ने समाधान किया । भगवान ने ब्रह्माजी को व्यापि

वैकुंठ में सुनाया हुआ चतुःश्लोकी भागवत भी सुनाया । भगवान् स्वयं जगद्रूप हुए हैं । जगत के आदि-मध्य-अंत में भगवान् ही हैं । अन्यथा प्रतीति भगवान की माया से होती है । ये समझकर स्वस्वरूप भी ऐसा ही समझना चाहिए । दशलीला विशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण सर्वत्र सर्वदा क्रीड़ा करते हैं । इसी का विस्तार है श्रीमद्-भागवत । वेद-गीता-ब्रह्मसूत्र इन सभी विषयों का समाधान इस भागवत में से मिलता है ।

प्रकरण विभाग :

दूसरे स्कंध में स्थूल-सूक्ष्म-तत्त्वज्ञान प्रकरण ध्यान (अध्याय १-२) श्रोता वक्ता के हृदय की प्रसन्नता (अध्याय ३-४) मनन (अध्याय ५-१०) / मनन दो प्रकार से कहा है (१) उत्पत्ति (अ. ५-६-७) (२) उपपत्ति (अ. ८-९-१०)

तृतीय-स्कन्ध-सार :

भक्तोंको निर्दोष भगवान बनाते हैं :

शीघ्र कल्याण करने वाली कथा :

तृतीय स्कंध में श्री शुकने पद्मकल्प की शीघ्र कल्याण करनेवाली कथा सुनाई है । इसमें विदुर-मैत्रेय संवाद कहा है । भक्त विदुर ने हित की बात कही- धृतराष्ट्र ने नहीं मानी, दुर्योधन ने विदुर का अपमान किया । विदुरजी तीर्थ यात्रा के लिए विदा हुए । आज के लालची राजनीतिज्ञ नेताओं की तरह पक्ष पलटा नहीं किया । क्षेत्र संन्यास ले लिया । स्वस्थ शिष्टाचार दिखाया । यात्रा में पवित्रता पूर्वक प्रभु प्रसन्न हों ऐसे व्रत किये :

(१) सभी प्राणियों पर दया : (२) मिले उसमें संतोष : (३) सर्व इंद्रियो का संयम :

प्रभु इनसे जल्दी प्रसन्न होते हैं । यात्रा में तन मन वगैरह को शुद्धि हुई । उनके भाव की वृ

हुई । यमुना किनारे उद्धवजी मिले । वहाँ भगवद्-वार्ता हुई । भगवान द्वारा कहा हुआ, अपने हृदय रहस्यरूप, महिमा ज्ञान करानेवाला परमज्ञान, यही श्रीमद्-भागवत है । यह पाने के लिए विदुरजी हरिद्वार में गंगा तट पर मैत्रेयजी के पास आए । मैत्रेयजीसे विनती की और अनेक प्रश्न पूछे । मैत्रेयजी ने उत्तर में विश्व रचना की कथा कही । भगवान अपने सामर्थ्य से विश्व रचते हैं । खुद विश्व के मूल तत्त्वरूप होते हैं । स्वयं उनमें प्रवेश भी करते हैं । यह सब तत्त्वदेव भगवान की शरणागति और स्तुति करते हैं । उनको भगवान की शक्ति मिलती है और ब्रह्मांड की सृष्टि होती है । शरणागति और कृष्ण की गति से क्या संभव नहीं है ? ब्रह्मांड पुरुष भगवान की नाभि में से कमल हुआ । उसमें प्रवेश करके भगवान् ही ब्रह्मारूप से हुए । ब्रह्माजी को कमल का मूल नहीं मिला । भगवान की आज्ञा हुई और उन्होंने तप किया ।

सामर्थ्य मिला, समझ मिली । विविध विश्वों की रचना की । ब्रह्माजी की काया में से स्वायंभुव मनु और शतरूपाजी हुए । भगवान्‌ने उन पर श्री वराहनारायण रूपसे कृपा की । ऋषियों ने इन श्री वराहनारायण की स्तुति की । जल में डूबी हुई पृथ्वी को उन्होंने बाहर निकाला । जल में से जमीन तैयार करना तो इतना प्राचीन है । भगवान की क्रिया-शक्ति रूप यह श्रीयज्ञवराहजी हैं । उन्होंने हिरण्याक्ष का वध किया । हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु वैकुंठ में से असुर हो के आये हैं । ये अद्‌भुत लीला है । वैकुंठ में तो ये दोनों भगवान के द्वारपाल थे- जय और विजय । सनतकुमारों के द्वारा भगवानने उनको शाप दिलाया । भगवान को भक्त वासना दूर करनी है - युद्धलीला भी करनी है । युद्ध समान के साथ होता है । पार्षद समान होते हैं इसीलिये ऐसी विचित्र लीला भी की । शाप सेवकों को हुआ, उद्धार करने उदार स्वामी ने अवतार लिया । शापित सेवकों को

सुख सुविधा में रखा, स्वयं कष्ट सहन करके कृपा करने पधारे । सेवकों के काम, क्रोध, लोभात्मक तीन जन्म हुए । उनका उद्धार करने के लिए स्वामी प्रभु ने चार अवतार लिये :

(१) हिरण्याक्ष - हिरण्यकशिपु (२) रावण - कुंभकर्ण (३) शिशुपाल - दंतवक्त्र । इन तीनों के उद्धार के लिए प्रभु - (१) श्री वराह (२) श्री नृसिंह (३) श्री राम (४) श्री कृष्ण रूप में प्रकट हुये ।

युद्ध में प्रभुने प्रहारों को भी प्रेम उपहार समझ लिया । भगवान भक्त की भूल की ओर नहीं देखते हैं । भक्त को निर्दोष बनाते हैं । भक्त ने दिया हुआ श्रम भी सेवा रूप समझकर, अपराधी भक्तों को सुख में रखकर, अपराध दूर करने खुद कष्ट सहन करके, सामने से पधारे । दंड देकर शुद्ध भी करें ऐसे उदार प्रेम भरे स्वामी तो भगवान् ही हैं ।

भक्तों को सन्मार्ग देते हैं भगवान् :

अपनी कमाई को भोगने से प्रसन्न हो सकते हैं :

कर्दम ऋषि ब्रह्माजी की छाया में से हुए । मनुपुत्री देवहूति जी से उनका विवाह हुआ । योग बल से उन्होंने दिव्य विमान प्रकट किया । इच्छानुसार चलने वाला, चालक बिना का, सर्वभोग देनेवाला, अनेक मंजिलो वाला, जिसमें मणि के स्थंभ हैं, कृत्रिम और सच्चे पक्षियों वाला, पलंग और आसनवाला, ऐसा अद्भुत विमान प्राचीन भारतीय विज्ञान का सम्मान है । यह विमान उन्होंने पिता या ससुर के पास से नहीं माँगा है । उन्होंने अपनी पात्रता से प्राप्त किया है । विवाह पश्चात् मधु रजनी मनाई है । पिता या ससुर के पैसे से मौज-शौक, या विवाह के बाद प्रवास नहीं होते हैं, अपनी कमाई को भोगने से ही प्रसन्नता होती है- यौवन का यह गौरव है । सेवा से संतुष्ट ऋषि ने पत्नी को वैभव

भोग दिया । नौ कन्याएँ और एक पुत्र दिये । पुत्र रूप से हुए भगवान कपिल । भगवान की ज्ञान-कला का ये मर्यादा-अवतार हैं । श्रीकपिलजी ने अपने पिता को आधिदैविक योग दिया । आध्यात्मिक योग जिज्ञासु, वत्सल माँ को दिया । शरणागत शिष्यरूप माँ को भगवानने गुरुरूप से ज्ञान दिया ।

(१) देह - देहि-विभाग (२) सांख्य ज्ञान (३) सबीज योग (४) भक्ति

देही के कल्याण में देह का सदुपयोग होना चाहिए । सच्चे साधु पुरुषों के संग से - कथा से - भगवान की महिमा समझ में आती है । महिमा-ज्ञान से प्रभु में प्रेम होता है । प्रगाढ़ प्रेम से प्रभु दर्शन देते हैं इच्छित बातें भी करते हैं । हिंसा, दंभ, मात्सर्य भाव वाला भक्त तामस है । विषय, भोग, ऐश्वर्य आदि भाव वाला भक्त राजस है । कर्म निवृत्ति वगैरह भजनके लिए भजनेवाला भक्त सात्त्विक है । अहैतुकी (कारण बिना की) (रुके नहीं ऐसी) पुरुषोत्तम भक्ति

निर्गुण है । मन की भगवान में स्वाभाविक-वृत्ति भक्ति है । भगवान में अविच्छिन्न मनोगति-निर्गुण भक्ति योग है । जिससे कृतार्थता है । ऐसे भक्त तो भगवान देना चाहें फिर भी मोक्ष की इच्छा नहीं करते हैं । निर्गुण भक्त तो सेवा से ही संतुष्ट है । यह भक्ति उन्हें अंत में सायुज्य देती है ।

सृष्टि सर्जन रूप सर्गलीला में भगवान की क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति दोनों का उपयोग है । शरणागति से दोनों के लाभ ले सकते है ।

प्रकरण विभाग :

तीसरे स्कंध मे बंध सृष्टि प्रकरण (अ.१-१९) और मुक्त सृष्टि प्रकरण (अ.२०-३३) हैं; जिसमें गुणातीत सृष्टि (अ.१-६) सगुण सृष्टि (अ.७-९) काल सृष्टि (अ.१०-११) मुक्त जीव सृष्टि और नाम सृष्टि (अ.१२) मुक्त जीव सृष्टि (उपोद्घात) (अ.१३-१९) तत्त्व मुक्ति (अ.२०-२४) काल मुक्ति (अ.२५) गुणातीत मुक्ति (अ.२६-२७) सगुण मुक्ति

(अ.२८) जीव मुक्ति (अ.२९-३३) विभाग हैं ।

चतुर्थ स्कंध सार :

सुयोग्य संतान :

आदर्श जीवन : दक्ष का धर्मफल - भगवान् :

चतुर्थ स्कंध में मनु ने अपनी पुत्री आकूति का विवाह ब्रह्मा पुत्र ऋषि रुचि से किया । उनके पुत्र रूप से भगवान सुयज्ञ हुए । उनकी पत्नी लक्ष्मी रूपा दक्षिणा हैं । यज्ञ दक्षिणा से पूर्ण होता है । मनु ने अपनी पुत्री देवहूति जी को ब्रह्माजी पुत्र कर्दम ऋषि से ब्याह दिया । उनकी नौ कन्याओं में से एक अनसूया जी थीं, जिनका ब्याह अत्रि ऋषि के साथ हुआ । ऋषि के तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर प्रकट हो गए । स्वसमान संतान के लिए ऋषि ने तप किया था । प्रजा परंपरा चलानी है परंतु समाज को दूषित या सामान्य संतान नहीं देना चाहिए । समाज को सन्मार्ग - स्नेह - स्वस्थता -

समुन्नति दे ऐसे ही संतान सुयोग्य गिने जाते हैं । जिंदा रहने के लिए जो जी जाए - वो जीव । जिंदा रहने के इस प्रयत्न में योग्य-अयोग्य विचार बिना जो जीवन समाप्त करता है उसे जीव-जंतु कहते हैं । विवाह पहले या संतान पहले दंपती को जीवन के स्पष्ट आदर्श निश्चित करने चाहिए । आदर्श बिना का जीवन तो अमास जैसा अँधियारा है । पति पत्नी के जीवन का आदर्श, ध्येय या सुविचारित पद्धति अपने जीवन की उन्नति है । अपने संतान के जीवन की उन्नति का पाया है । पढ़ने लिखने के बाद, या कमाने लगने के बाद, या उमर होने से विवाह हो जाना युवक युवतियों के लिए सामान्य है । उसमें तो जीव-जंतु को मजा आ सकता है । मानव को तो सभी उसे मान दें ऐसा आदर्श जीवन बनाना या गढ़ना चाहिए । यह तपोरूप है । श्रीमद्-भागवत में ऐसे राजा ऋषि वगैरह के ऐसे आदर्श के पश्चात् ही लग्न या संतान हुए हों ऐसा दिखता है । ऐसे अत्रि

ऋषि के घर संतानरूप से देव प्रकट हुए । ब्रह्माजी के अंश से चंद्र, विष्णु के अंश से भगवान् दत्तात्रेय हुए । भगवान ने स्वयं खुद को पुत्र रूप से दिया इस कारण दत्त । अत्रि के पुत्र, इसी लिए आत्रेय । शंकरजी के अंश से दुर्वासा हुए । मनु की पुत्री प्रसूति का ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष के साथ विवाह हुआ । उनको सोलह कन्याएँ हुईं । ज़िनमें से तेरह धर्म के साथ ब्याही गईं । जिसमें से एक मूर्ति के दो पुत्र हुए - भगवान के अंशरूप नर और नारायण । दक्ष ने एक पुत्री का विवाह अग्नि से कराया - स्वाहा, एक पितरों से ब्याही गई - स्वधा, आखरी सती तो शंकर को दी । इस दक्ष को अपने यज्ञ से भगवान फलरूप मिले । प्रभु कृपा हुई, धर्म पुरुषार्थ फलित हुआ । धर्म के फलरूप इस लोक या परलोक के सुख नहीं होने चाहिए । धर्म के फलरूप भगवान की प्रसन्नता या प्राप्ति होनी चाहिए ।

निश्चल ध्रुवजी का अनर्थ रहित अर्थ :

मनु के पुत्र उत्तानपाद थे । जिनके पुत्र ध्रुव हुए । सौतेली माँ के कटु वचनों से उनका हृदय छलनी हो गया । स्वमाता ने प्रभु मार्ग पर जाने की प्रेरणा की । प्रभु कृपा से मार्ग में नारदजी मिले जिन्होनें प्रभु मार्ग पर चलना सिखाया । भक्त मिले तो भगवन् मार्ग मिलता है और फलित होता है । निश्चल ध्रुवजी ने पाँच वर्ष की उमर में प्रभु के लिए तप किया । श्री यमुनाजी ने कृपा की । तप में सानुकूलता दी और प्रभु मिला दिये । ध्रुवजी के दृढ़ आश्रय, दीनता और स्तुति से प्रभु प्रसन्न हुए । देव दुर्लभ ध्रुव पद दिया । किसी ने भी पहले न प्राप्त किया हो ऐसा यह अर्थ है । यह अर्थ पुरुषार्थ है । अनर्थ बिना का है यह अर्थ । बाकी सबकुछ है व्यर्थ । छत्तीस हजार वर्ष तक का साम्राज्य भी प्रभु ने दिया । प्रसन्न प्रभु ने दिया हुआ तो प्रसाद है । उसका भोग बाधक नहीं, फल साधक होता है ।

ध्रुवजी आज भी आकाश में दर्शन देते हैं, मार्ग-दर्शन देते हैं, जीवन के मार्ग–दर्शक होते हैं ।

आदर्श राजा पृथु का क्लेश बिना का काम :

पृथु राजा भगवान का आवेश-अवतार हैं । उनकी पत्नी लक्ष्मी रूपा अर्चि । पृथु ने अन्न बिना पीड़ित प्रजा को कृषि-विज्ञान दिया । पृथ्वी दोहन किया । खूब अन्न उत्पन्न किया । उद्योग - तेली बीज, तमाकू वगैरह से भी अन्न महत्त्वपूर्ण है, सबका पोषण करता है जो भगवद् रूप है । पेट के लिए लोग पाप भी करते हैं न ? पेट भरा हो तो पाप की प्रवृत्तियाँ कम हो सकती हैं । गाँव-नगर वगैरह की रचना भी पृथुजीने की है । भटकते मानवने या आर्यो ने ऐसी रचना की है ऐसा तो भ्रष्ट अंग्रेज इतिहासकारों ने भारत देश से द्वेष के कारण ऐसा काफी कुछ लिखा है । राजा पृथु को काम पुरुषार्थ मिला है । उन्होने न देने वाली पृथ्वी को पुनः देने वाली कर दिया । यह क्लेश बिना का काम है ।

सबकी कामनाऐं इससे पूरी हुई हैं । पृथु राजा होने पर भी पृथ्वी के पति नहीं पर पृथ्वी के पिता माने गए हैं । अंत में राजा को सनतकुमारों का सत्संग मिला और भगवद्‌ प्राप्ति हुई ।

प्रचेतसों का सायुज्य मोक्ष :

कर्म विशेषज्ञ प्राचीनबर्हि को नारदजी का सत्संग मिला और कृपा हुई । यज्ञ के बदले भगवान की सेवा, कथा का आसान और सफल मार्ग बताया । जिससे प्रभु प्रसन्न होकर मिलते हैं । पुरंजन-आख्यान से परोक्ष कथा कही । जिससे ब्रह्मभाव-समभाव हो गया । उनके पुत्र प्रचेतसों को भक्त रुद्र की कृपा हुई । रुद्रगीत मिला । भक्तकृपा से भक्ति में प्रेरणा हुई । प्रचेतसों को सेवा और शरणागति मिली । प्रभु प्रसन्न हुए और उनकी अभिलाषा पूरी हुई । मोक्ष पुरुषार्थ मिला, सायुज्य मिला । धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष यह पुरुषार्थ है । भगवान भक्तों को कृपा और प्रसन्नता से यह दे देते हैं । यह अलौकिक है ।

प्रकरण विभाग :

धर्म : (अ.१-७) अर्थ : (अ.८-१२) काम : (अ.१३-२३) मोक्ष : (अ.२४-३१)

पंचम स्कंध सार :

भारत का सिद्ध विज्ञान :

पंचम स्कंध में मनु पुत्र प्रियव्रत राजा ने विरक्त होने के बावजूद भगवद्‌-आज्ञा पालन करके राज्य किया । प्रभु कृपा से सामर्थ्य मिला । सूर्य जैसे दिव्य रथ में बैठकर सूर्य के आस-पास सात बार भ्रमण किया । जिससे एक ही केंद्र वाले सात द्वीप और सात सागर बन गए । अंतरिक्ष में सिद्ध उपग्रह भेजने का विज्ञान भारत में था । आज के विज्ञान के पास खतरा है, प्रयोग है । प्राचीन भारत के सिद्ध योग में प्रयोग नहीं कृपा योग था । राजा की समर्थ पुत्र परंपरा हुई । जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान ऋषभदेवजी के पुत्र भक्त भरतजी हुए । उन्हें तीन जन्म के बाद प्रभु प्राप्त हुए । भवाटवी-परोक्ष

कथारूप से राजा रहुगण को उन्होंने ज्ञान दिया । निःसंग रहकर सत्संग करना - ऐसा समझा दिया । हिरण के प्रसंग से उन्होंने हरि गुमाए थे न ? महापुरुषों की कृपा से कृतार्थता मिलती है ।

भारत का गौरव :

भूगोल-खगोल रूप से भगवान के स्थूल स्वरूप और महिमा का वर्णन है, सात द्वीपों के नाम - (१) जंबूद्वीप (२) प्लक्षद्वीप (३) शाल्मलिद्वीप (४) कुशद्वीप (५) क्रौंचद्वीप (६) शाकद्वीप (७) पुष्करद्वीप

सात सागरों के नाम : (१) क्षारोद (२) इक्षुरसोद (३) सुरोद (४) घृतोद (५) क्षीरोद (६) दधिमन्दोद (७) शुद्धोद

मध्य में जंबूद्वीप है, उसके आसपास क्षारोद, जिसके आसपास प्लक्ष, जिसके सभी बाजू इक्षुरसोद, ऐसे सातों की क्रमशः स्थिति है । निर्दोष द्वीप जंबूद्वीप में अनेक गर्भ ज्ञानी सुलभ हैं । जंबूद्वीप के नौ खंडो में से एक खंड है भारत । इस भारत में तो देवता भी जन्म लेने की इच्छा रखते हैं यह भारत का गौरव है । आज भारत में जन्मे हुए सम्पत्ति और स्वार्थ के लिये विदेश में बसते रहते हैं । विदेश में देश की संस्कृति-संतान-संस्कार को बचाए रखना आसान नहीं है । अनेक विदेशी भारत में ज्ञान पाने के लिए आते थे - आते हैं । अनेक भारतीय भारत की संस्कृति-संदेश-धर्म लेकर जीवनरीति सिखाते हुए विदेश में गौरव से गए हैं - बसे हैं । जिसके चिन्ह आज भी विदेश में दिखाई देते हैं । गुरुरूप में गौरव से विदेश जा सकते हैं ।

पृथ्वी के ऊपर सूर्य, चंद्र, ध्रुव, सप्तर्षि, नक्षत्र निश्चित अंतर से हैं । पृथ्वी के नीचे सात तल हैं ।

(१) अतल (२) वितल (३) सुतल (४) तलातल (५) महातल (६) रसातल (७) पाताल

जिसके नीचे भगवान् शेष नारायण हैं । नरक उनसे नीचे और जल से ऊपर है । यहाँ दंड भोगने

पर पाप शुद्धि होती है । ऐसी सभी स्थिति वैकुंठ भगवान का विजय है ।

प्रकरण विभाग :

पंचम स्कंध में स्वरूप (आत्मा) में स्थिति । (अ.१-१५) जिसमें भगवान से (अ.१-६) योग से (अ.७-१४) ज्ञान से (अ.१५) तथा देश में स्थिति (अ.१६-२६) जिसमें भूः (अ.१६-२०) भुवः (अ.२१-२३) स्वः (अ.२४-२६)

षष्ठ स्कंध सार :

भगवान का धर्म पुष्टि :

विशिष्ट पुरुषार्थ :

छट्ठे स्कंध में तीव्र प्रारब्ध भोग से अधम हुए ब्राह्मण अजामिल का उद्धार भगवान के नाम द्वारा कृपा-महिमा से कहा हुआ है । कर्म-ज्ञान आदि से जो शुद्धि नहीं होती है वैसी केवल कृष्ण-भक्ति से होती है । भगवान की अनन्य भक्ति और भगवद्

भक्त का संग किसे शुद्ध नहीं कर सकता । रूप द्वारा भी प्रभु अनुग्रह करते हैं ।

शरणागत इंद्र पर भगवान ने महापुष्टि की है । उसका अक्षम्य अपराध में से उद्धार किया । कर्मरत विश्वरूप, ज्ञाननिष्ठ दधीचि और भक्तिपूर्ण वृत्रासुर के वध में इन्द्र निमित्त हुआ । फिरभी प्रभु के प्रभाव से उसका पतन नहीं हुआ ।

वृत्रासुर ने युद्ध में मरते-मरते इन्द्र को अद्भुत सत्संग दिया था । भगवान स्वभक्त को क्लेशरूप संपत्ति देते नहीं हैं । अपने सेवकों के तीन पुरुषार्थ - धर्म-अर्थ-काम के प्रयासों को प्रभु निष्फल करते हैं । जिससे प्रभु-प्रसन्नता-प्रसाद का अनुमान हो सकता है । ऐसा प्रसाद तो अकिंचन को ही सुलभ है अन्य को तो दुर्लभ है । भक्त तो मोक्ष की इच्छा भी नहीं रखता । पुष्टि-भक्ति-मार्ग के चार विशिष्ट पुरुषार्थ वृत्रासुर ने भगवान की स्तुति करके कहे है :

(१) भगवान का दास्य : धर्म पुरुषार्थ

(२) भगवान स्वयं : अर्थ पुरुषार्थ

(३) भगवान के दर्शन की तीव्र लालसा :
काम पुरुषार्थ

(४) भगवान के हो जाना : मोक्ष पुरुषार्थ

भगवान की कृपा से ही सब कुछ संभव होता है । भगवान भक्तों पर अनुग्रह करते हैं यह पुष्टि है । जो भगवान का सामर्थ्य है, धर्म है । काल, कर्म, स्वभाव को भी हटा कर प्रभु भक्तों का काय करते हैं । दिति के असुर होने वाले पुत्र मरुत देव रूप हुए । प्रभु पूजन से कृपा हुई, स्वभाव बदला, मरे नहीं । काल, कर्म, स्वभाव भी प्रभु की कृपा के आगे कुछ नहीं कर सकते । विश्वरूप के पास से, सर्वत्र रक्षा करने वाला नारायण कवच प्रकट हुआ वृत्र की मृत्यु से भक्ति उत्पन्न हुई,- स्तुति रूप स वृत्रासुर चतुःश्लोकी हुई । भगवान की शरणागति स्नेह, समर्पण से क्या संभव नहीं है ? कृपा क्य नहीं कर सकती है ?

प्रकरण विभाग :

छट्टे स्कंध में नाम (अ.१-२-३) ध्यान (अ.४-१७)
अर्चन (अ.१८-१९)

सप्तम स्कंध सार :

अपने माने हुए सत्य को दूसरे पर लादना :
दुराग्रह : यथार्थ सत्य का स्वयंपालन करना
सदाग्रह-सत्याग्रह :

सप्तम स्कंध में भक्त प्रह्लादजी की अद्भुत कथा है । प्रह्लादजी को नारदजी के अनुग्रह और सत्संग जब माँ के गर्भ में थे तब भी मिला था । भगवान ही अपने भक्त के रक्षण, पोषण, शिक्षण को संभाल लेते हैं । प्रह्लादजी पाँच साल के थे । असुर पिता की बनी बनाई व्यवस्था में भक्त पुत्र न जम सके । हिरण्यकशिपु ने तीव्र तप किया था । कल्याण के नहीं, स्वार्थ के लिए । असुर स्वार्थ में ही रचे पचे रहते हैं । उसका सामर्थ्य, साधन,

साम्राज्य, सम्पत्ति, सत्ता वगैरह विवेक बिना के स्वार्थ के लिए ही था । उसने अपने माने हुए सत्य को दूसरों पर लादने के लिए अत्याचार किये । दुराग्रह किया । असुर सम्पन्न होने पर अपने कल्याण का या सामनेवाले के सुख का विचार नहीं करते । अंत में उनका अंत प्रभु कर देते हैं । भगवन् मार्ग प चलने वाले भक्त प्रह्लाद को असुर ने रोकने के अनेक उपाय किये । सीमा बिना के अत्याचा किये । प्रह्लादजी न रोए, न डिगे, न डरे । सन्मा पर जाने से रोकने वाला असुर होता है प्रतिकूलता-पीड़ा सहन कर सन्मार्ग पर आ चलनेवाला भक्त होता है । प्रह्लादजी ने किसी क दया नहीं माँगी है, दुःख देनेवाले का अमंगल नह चाहते हैं । अपने पर गुजरती हुई परेशानियों को याद किया न उनकी फरियाद की । प्रसन्नता सहन करते रहे । अपना माना हुआ सत्य किस और पर लादने का प्रयत्न भी नहीं किया ।

यथार्थ सत्य पर आग्रह पूर्वक आचरण करते रहे । सच्चे सत्याग्रही तो ये भक्त प्रह्लादजी हैं । आज के कहे जाते हुए सत्याग्रही तो प्रायः अपना माना हुआ सत्य दूसरों पर लादने का प्रयत्न करते हैं । अपनी माँग सामने वाला स्वीकार करे इस कारण संघर्ष करते हैं । प्रह्लादजी ने हिरण्यकशिपु के पूछने पर अपनी सत्य बात निर्भयता से कही है । वो स्वीकार करे या उसपर आचरण करे ऐसा आग्रह या दबाव नहीं किया है । अपने सत्य का स्वयं सदाग्रह रखा है । पिता या गुरु की बात भी भगवान, सत्य या धर्म से विरुद्ध हो तो नहीं स्वीकारनी चाहिए । अपनी शास्त्र शुद्ध सच्ची बात पर टिके रहना चाहिए । उसमें कोई दोष नहीं लगता । परन्तु उसमें गुरुजन का अपमान या तिरस्कार नहीं होना चाहिए । यह भक्त प्रहलादजी का व्यवहार है ।

उन्होंने सहाध्यायीयों को सच्चा मार्ग दिखाया

है । मित्रों के मार्ग पर खुद चले नहीं गये हैं । अकेले होने के बावजूद वे अडिग रहे हैं । मित्रों को मंगल मार्गदर्शन और सच्ची समझ देते रहे हैं ।

मित्रों को मंगल मार्गदर्शन :

कुमार अवस्था (२ से ५ साल की वय) हो तब से, भगवन मार्ग पर आचरण शुरु कर देना चाहिए । मनुष्य जन्म दुर्लभ है- व्यर्थ बिताने के लिए नहीं है । भगवान ही सबके सुहृद (हित करने वाले मित्र) हैं । इन्द्रिय भोग के लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिए । सुख दुःख तो प्रारब्ध अनुसार, कालक्रम से आते जाते हैं । जब तक शरीर स्वस्थ हो तब तक अपना स्वार्थ साध लेना चाहिए । सच्चा स्वार्थ तो यही है भगवान् कृष्ण की एकांत भक्ति । जिससे सर्वत्र भगवान का दर्शन हो सके । प्रभु प्रसन्न हों तो अलभ्य क्या है ? कमाने से ज्यादा तो कृष्ण को भजना आसान है । अपने अंद तथा सर्वत्र रहे हुए हैं न ? देव-असुर-मनुष्य-यक्ष-गंधव कोई भी जीव भगवान को याद करके कृतार्थ हो जात

है । भगवान का भजन करने में द्विज, देव, ऋषि या उत्तम होना जरुरी नहीं है । भगवान को प्रसन्न करने में सदाचार या सर्वज्ञता, दान या तप, पूजा या पवित्रता, पुण्य या व्रत पूर्ण नहीं हैं । भगवान तो निर्मल भक्ति से प्रसन्न होते हैं । दुःख हरने वाले हरि और सुख देने वाले भगवान हैं । उनकी ही निरपेक्ष रुप से भक्ति करनी चाहिए । अनेक अनर्थ में से भगवान बचाते हैं । प्रह्लादजी ने तो पुकारा भी नहीं, फिर भी अपने सेवक का वचन सत्य करने अपनी विश्वव्यापकता व्यक्त करने भक्तरक्षक भगवान श्रीनृसिंह-रूप से खंभे में से प्रकट हुए । भयानक फिर भी अभयप्रद । असुर को मारा और भक्त को तारा ।

सबके कल्याण के लिए सद्धर्म भी नारदजी ने युधिष्ठिर से कहे । अपने धर्मानुसार जीने वाले का कल्याण होता है । भगवान की शरणागति, सेवा, गुणगान से सब कृतार्थ होते हैं ।

प्रकरण विभाग :

सातवें स्कंध में : असद् वासना : (अ.१-५)
सद्वासना : (अ.६-१०) मिश्रवासना : (अ.११-१५)

अष्टम स्कंध सार :

आपत्ति में से बचानेवाले उदार भगवान् :

आत्मनिवेदन तो परस्पर है :

अष्टम स्कंध में भगवान् श्रीहरि ने शरणागत निःसाधन-आर्त-भक्त गजेन्द्र का भी उद्धार किया। यह गजेन्द्र समर्थ था। सामर्थ्य या स्वजन भी उसे ग्राहपाश से बचा न सके। मोह पाश या कालपाश में से भगवान बिना कौन छुड़ा सकता है। श्रीहरि ने गजेन्द्र को छुड़ाया।

दुःखी देव भी भगवान की शरण में आते हैं। शरणागत की सफलता का संपादन भगवान् खुद करते हैं। भगवान् ने सोचा कि वो देवों का दुःख दूर कर दें। समुद्र मंथन कराया। मंदराचल का मंथन-दंड

बनाया - वासुकी नाग को मंथन की रस्सी बनाया - निंद्रारूप से वासुकी नाग में स्वयं प्रवेश किया - कूर्मरूप से पर्वत धारण किया - अजितरूप से खुद मंथन किया। शंकरजी ने काल-कूट, विषपान प्रभु प्रसन्नता और विश्वहित के लिए किया। अपमान-कष्ट सहन करके भी सबका कल्याण करनेवाले यह शंकर हैं। भगवान ने धन्वन्तरीरूप से अमृत दिया। मोहिनी-नारायणरूप से शरणागत देवों को अमृत पान कराया। दैत्यों को मोह कराकर उनका ध्यान भंग कर दिया। महादेवजी को भी मोहित कर दिया। भगवान की शरण में जाए तो सर्वत्र सफल हो जाए।

संजीवनी विद्या के ज्ञाता शुक्राचार्य के प्रभाव से समर्थ हुए भक्त राजा बलि पर कृपा की। माँ अदिति - शरणागत देवों का श्रेय किया। श्री वामन जी (उपेन्द्र) रुप से प्रभु प्रकट हुए। बलि राजा के आत्मनिवेदन का अंगीकार किया। बलि सत्य संनिष्ठ हैं - प्रह्लादजी के पौत्र हैं न ? सत्य के लिए

सर्वस्व छोड़ने को तत्पर हो गये । असत्य असह्य है, असुर धर्म है । सत्य भगवद् धर्म है । सत्य का दावा तो सब करते हैं परंतु सत्य के लिए सहन बहुत कम करते हैं । स्वार्थ का सवाल हो तो सत्य भी चलेगा, असत्य भी । यह संसारियों की स्वाभाविकता है । सत्पुरुषों को ऐसा मननीय नहीं है वे तो सत्यशील होते है । भगवान वामन ने तीन कदम पृथ्वी माँगते हुए और मापते हुए बलि को अपना बना लिया । खुद बलि के हो गये । सत्यनिष्ठ को स्वनिष्ठ बना दिया । उसके द्वारपाल बनकर सुतल के दरवाजे पर स्वयं खड़े रहने का वचन दिया । "मैं और मेरा सबकुछ प्रभु का है, प्रभु के लिए ही है ।" ऐसा समझकर दीनता पूर्वक सबकुछ अपना प्रभु को समर्पण करदे, प्रभु की सेवा में विनियोग कराए तो उसे क्या बाकी रहता है ? भगवान् इन्द्र के साथ वैभव से स्वर्ग में रहने नहीं गए, माँ के साथ स्वजन रूप से पृथ्वी पर नहीं रहे, आत्मनिवेदन

करने वाले भक्त बलि के साथ आत्मीयता से सुतल में पधारे और बिराजे । अंतःकरण में भगवान के लिए स्वकीयता के संवेदन जागृत हों और बढ़ें,- भगवान में भी वे स्नेह संवेदन जगायें और बढ़ायें उसे आत्मनिवेदन कहते हैं । भक्त और भगवान का परस्पर आत्मनिवेदन होता है ।

भगवान ने मत्स्यनारायण-रूप से पृथ्वी रूप नौका में बैठाकर सत्यव्रत राजा की रक्षा प्रलय में की और उसे ज्ञान दिया । गुरुचरित्र है ये । ज्ञान देने वाला नीचे जल में और ज्ञान लेने वाला ऊपर नाँव में । पुष्टि है न ये ? सत्य और व्रत में रत रहने वाला सच्चा शरणागत हो सकता है । प्रभु प्रलय में भी उसकी रक्षा करते हैं ।

प्रकरण विभाग :

अष्टम स्कंध में : आपत्ति में हरिसंस्मरण : (अ.१-४) संपत्ति मे दान (दाता) : (अ.५-१४) स्वोक्त निर्वाह : (अ.१५-२३) मत्स्य चरित्र : (अ.२४)

नवम स्कंध सार :

विशेष जाति परिवर्तन :

मनुष्य गौरव : पुरुष को प्रसव :

प्रवाह परिवर्तन :

नवम स्कंध में सत्यव्रत राजा सर्व ज्ञान विज्ञान सम्पन्न हैं वे पिछले कल्प में हुए थे । प्रभु कृपा से वो इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए । श्राद्ध देव उनका नाम । श्रद्धा उनकी पत्नी । पुत्र के लिए इष्टि (एक यज्ञ) किया । ऋषियों का एक व्यवस्थित विज्ञान है - यज्ञ । प्रारब्ध के आगे पंगु न होना पड़े, नसीब की दुर्बलता से निराश न होना पड़े, ऐसा ये समर्थ है । पत्नी ने पुत्री की इच्छा की - मंत्र बदल दिये - बेटी हुई । प्रभु को विनती करके, फिरसे बेटी में से बेटा बनाया । यह शिव शापित प्रदेश में गया । स्त्री हो गया । उसे चंद्रपुत्र बुद्ध से एक पुत्र भी हुआ - जिसका नाम पुरुरवा था । शंकरजी की कृपा से

पुनः स्त्री में से एक महिना पुरुष, एक महिना स्त्री होनेका वरदान मिला । आज के जमाने में होते हुए यौन परिवर्तन से भी यह विशेष है न ? प्रभु की अद्भुत लीला है । मनु वंश में हुए भक्त अम्बरीश । भगवान की तन-धन से सेवा की, मन प्रभु में लग गया । अत्यंत उग्र ऋषि दुर्वासा का ब्रह्म-तेज, भक्त राजा के क्षमाशील वैष्णव-तेज के सामने झुक गया । मनु वंश में शशाद राजा हुए । देवराज इन्द्र भी उनकी मदद माँगने आते थे । मनुष्य गरीब होकर देवों के पास जाकर माँगते न रहे, देव भी मनुष्यों के पास, आकर माँगे यह गौरव की बात है । गौरव से जिया जा सकता है गरीबाई से नहीं । इन्द्र को वैल बनाकर उसके कंधे पर बैठकर राजा ने युद्ध जीत लिया । इसीलिए उनका नाम पुरंजय-इन्द्रवाह-ककुत्स्थ हुआ । उनके वंश मे युवनाश्व हुए । ऋषियों के मंत्र जल से उनकी प्रसूति हुई थी । एक पुरुष ने पुत्र को जन्म दिया । यह पुत्र हुए चक्रवर्ती राजा

मान्धाता । कलकी असंभव लगती हुई बातें आज विज्ञान भी स्वीकारता है न ? विज्ञान तो साबित हो सके उतना ही स्वीकारता है । शास्त्र तो साबित हो चुका सत्य ही कहता है । विज्ञान तो अज्ञान बालक जैसा है । विकास होने पर समझता है । शास्त्र तो पालक है - पिता जैसा है । सुविकसित सच्ची समझ उसमें है । इस वंश में हुए राजा भगीरथ । गंगाजी को वो भारत में लाये । नदी के प्रवाह को भी बदल डाला । उनके यश रूप में गंगाजी का नाम हुआ भागीरथी । उस वंश में सूर्यवंश में प्रकट हुए भगवान श्री रामचंद्रजी ।

आदर्श-मर्यादा पुरुषोत्तम-त्यागमूर्ति श्री रामचंद्रजी :

ये श्री रामचंद्रजी तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, साधु शिरोमणि हैं, त्यागमूर्ति हैं । उन्होंने स्वेच्छा से लोक वेद मर्यादा का पालन किया, और अपने आचार से धर्मानुकूल जीवन का उपदेश दिया । विशेषतः तो अपने सिद्धांतों-आदर्शों की मर्यादा पालने वाले ये मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं । एकपत्नी व्रत, शरणागत परिपालन-वगेरह उनके आदर्श हैं । प्राचीन परम्परा अनुसार श्रीरामने बहु पत्नी प्रथा का पालन नहीं किया है । शरणागतों पर विशेष कृपा करते हुए उन्होंने लोक-वेद-मर्यादा का उल्लंघन भी किया है । पुष्टि कार्य किये हैं । श्री शुकने यहाँ भगवान के पौरुष कर्म गाये हैं । इसी कारण ताड़का वध, अहल्या उद्धार वगैरह कहे नहीं हैं । राजा परीक्षित ने तो श्रीमद्-भागवत सुनने से पहले तत्त्वदर्शनीयों व तत्त्वज्ञानियों से अनेक वार रामचरित्र सुना है । श्रीशुक यह जानते हैं इसीलिए यहाँ विशेष चरित्र ही कहे हैं । श्री रामायण सर्वोत्तम आदर्श मानव जीवन का उपदेश करता है । श्रीमद्-भागवत सर्वोत्तम आदर्श भगवदीय जीवन का उपदेश करता है । श्रीशंकर ने श्रीरामायण की रचना करने के वाद श्रीशुकदेवजी रूप से श्रीमद्-भागवत गान, से रस मग्नता का अनुभव किया है । मर्यादा के बाद पुष्टि

के स्वाद से आह्लाद जाना है । श्रीराम के रूप से भगवान ने पुष्टि के बीज बोए हैं - श्रीकृष्ण रूप से पुष्टि के फल दिये हैं । भगवान श्रीरघुनंदन ने तो स्त्रैण (स्त्रीवश) पिता के वचन पालन करने के लिए वनवास को स्वीकारा है । स्वार्थ-मोक्ष वगैरह के लिये - वनवास स्वीकार करने वाले राजा-ऋषि-मुनि बहुत होते हैं । पर देवकार्य के लिये - स्त्रैण पिता के वचन के लिए, निःस्वार्थ भाव से, सर्व हित के लिए वनवास तो श्री राम ने स्वीकारा है । सीता जी और लक्ष्मण जी ने उनका साथ दिया है,- स्नेह और सन्निष्ठा से सेवा के लिए । वानर और रींछ के बीच भी श्रीराम जी रहे हैं । उनको उन्नत, समर्थ, कुशल बनाया है । समाज सुधार की सच्ची दिशा दिखाई है । इन वानर-रींछ वीरों के पास से समुद्र पर सेतुबंध रचाया है । उसमें सहकार-श्रम यज्ञ समझाया है । स्वाश्रय-स्वदेशी का आदर्श आग्रह रखा है । नदी और सरोवर पर बहुत लोग पुल बांधते है - श्रीराम ने तो समुद्र पर पुल बांधा है । इस

सेतुबंध से सामाजिक-राजकीय-धार्मिक-अखंडितता देश को दी है । भाषाकीय वगैरह विभाग से देश को विभाजित नहीं किया है । चीन ने दीवार बनाई है भारत ने सेतु बनाया है । दीवार एक दूसरे से अलग करती है सेतु सबके साथ मेल से सहयोग देता है । सच्ची सीता जी लंका में नहीं हैं वे छाया सीता हैं । सच्ची सीताजी गार्हपत्य-अग्नि में सुरक्षित हैं । अग्निपरीक्षा के बाद वापस पधारीं हैं । अग्नि ने दी हुई छाया सीता पुनः अग्नि में समाई हैं । सबको रुलाए वो रावण । सबको प्रसन्न रखें वो राम । समर्थ रावण कुटुंबके क्लेश से, भक्त द्वेष से, अधर्म से मारा गया । श्रीरामने विजय पाई स्वधर्म से । अवधपुरी को आनंद दिया । राम-राज्य में सभी प्रकार का सुख था, इच्छा न होने पर मृत्यु भी नहीं आती थी । उस आदर्श राज्य को सभी याद करते हैं । युधिष्ठिर का धर्म राज्य और राम का राम-राज्य । आदर्श, अन्न, द्रव्य, संशोधन या वस्तु भारत को गरीब जैसे होकर विदेश में से लाने

नहीं चाहिए । अपने सर्व प्रकार के विकास देश में से ही प्राप्त करने चाहिए । विदेशों में गौरव से भेजने चाहिए । भगवान श्रीराम ने अयोध्या वासियों को साकेत धाम में बसाया और मुक्ति दी । श्रीराम ने तो स्मरण करने वाले के हृदय में दण्डकारण्य के काँटो से घायल चरण कमल पधराऐ हैं । आदर्श - स्नेह - समर्पण - सहनशीलता - सन्निष्ठा - सामर्थ्य का सुभग सुंदर संदेश दिया है ।

चंद्रवंश में भगवान परशुरामरूप से पधारे हैं । सत्ता और सम्पत्ति से उद्धत हुए, शासक क्षत्रियों को दंड दिया । ज्ञान-मूर्ति विप्रों का गौरव बढ़ाया । सम्मान-सत्ता या सम्पत्ति के दबाव से नहीं देना चाहिए । सम्मान तो सदगुण, सदविद्या और सत्कार्य का होना चाहिए ।

माधुर्य मूर्ति पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण :

चंद्रवंश शिरोमणि हुए श्रीकृष्ण । वे लोक-वेद-प्रसिद्ध पुरुषोत्तम हैं । पुष्टि प्रकट करके हुए पुष्टि

पुरुषोत्तम । वे तो माधुर्य-मूर्ति हैं, प्रेम-पुंज हैं, कला-कुंज हैं, प्रभाव-निकुंज हैं, कृपा-कल्पतरु हैं । बिना साधन के सबका समुद्धार करने पूर्णानंद प्रभु शरणागत वत्सल प्रकट हुऐ । अद्भुत भगवान की लीला और कथा भी अद्भुत है ।

प्रकरण विभाग :

नौवें स्कंध में सूर्यवंश में चंद्रवंश का उपक्रम (अ.१) सूर्यवंश : (अ.२-१३) चंद्रवंश : (अ.१४-२४)

दशम स्कंध सार :

पिता के पुत्र पुरुषोत्तम :

दशम स्कंध मे अद्भुतकर्मा कृष्ण की अद्भुत लीलाऐं हैं । अद्भुत कथा है । यह तो शास्त्र सिद्ध है, लोक प्रसिद्ध है । वेद के पूर्वकांड में क्रिया-शक्ति विशिष्ट भगवान के यज्ञरूप का प्रतिपादन है । वेद के उत्तरकांड में ज्ञान-शक्ति विशिष्ट भगवान के ब्रह्म-रूप का प्रतिपादन है । श्रीमद्-भागवत में तो संपूर्ण

क्रिया-शक्ति और संपूर्ण ज्ञान-शक्ति प्रकट करके क्रीड़ा करते हुए उभय विशिष्ट स्वयं भगवान् हैं । रसात्मा पूर्णानंद दश लीला विहार युक्त श्रीकृष्ण का गान है । सर्वतंत्र, स्वतंत्र भगवान प्रेम परतंत्रता का अनुभव करने के लिए व्रज में प्रकट हुए हैं । श्री नंदालय में लोक वेदातीत पुरुषोत्तम पिता के पुत्र रूप से प्रकट हुए हैं । मथुरा में कंस के कारागृह में लोक-वेद-प्रसिद्ध पुरुषोत्तम प्रकट हुए हैं । अद्‌भुत बालकरूप में - फिर चतुर्भुज रूप में - फिर द्विभुज रूप में दर्शन दिये हैं । गोकुल में प्रकट किया गया स्वरूप सर्वव्यापक है जिसमें मथुरा का स्वरूप समा जाता है । व्रज में माया के आच्छादन से किसी को प्रभु के प्राकट्य का ज्ञान नहीं है । जन्माष्टमी की मध्यरात्रि को प्राकट्य हुआ है । नौमी को प्रातःकाल श्रीनंदमहोत्सव हुआ है । जैसे दूसरों के घर में बालक पैदा होते हैं वैसे अपने घर में भी पुत्र का जन्म हुआ है ऐसा नंदजी ने माना । मथुरा में

भगवान ने माहात्म्य ज्ञान कराया । अद्‌भुत बालक के स्वरूप से आनंद हुआ, आदर हुआ, स्तुति की । गोकुल में वे अपने ही पुत्र लगे, प्रेम, आनंद, आत्मीयता, उत्साह और उत्सव हुआ । कृष्ण तो विश्वेश्वर हैं । फिर भी गोकुल जैसे गाँव में पुत्र रूप से पधारे । विश्व कृष्ण का है व्रज तो नंदजी का है । जन्म कृष्ण का - उत्सव नन्दजी का है । वो घर या गाँव जितना ही नहीं रहा, सबको उत्सव का स्पर्श हुआ । हृदय के उछलते हुए आनंद ने सबको उछाल दिया । दही, दूध, घी, मक्खन भी उछाल दिये । श्रीनन्दजी का तो महोत्सव हो गया । विश्व कृष्ण का, घर नन्दजी का नंदालय । विश्व कृष्ण का पर कृष्ण व्रज के ।

कृष्णावतार कारण :

अनन्य भक्ति से भगवान की समझ :

भक्तों के दुःख दूर करने के लिए, परमहंसो को भक्ति देने के लिए, बिना साधन के तन्मयता से

प्राणी मात्र को मोक्ष देने के लिए, यदुकुल की कीर्ति बढ़ाने के लिए, संसार के संताप में जलते हुए लोगों को श्रवण, स्मरण योग्य लीलाओं को देने के लिए, पृथ्वी का भार उतारने के लिए, धर्म के संस्थापन के लिए, साधु पुरुषों की सुरक्षा के लिए, दुष्टों के नाश के लिए, ब्रह्माजी का वचन सत्य करने के लिए, सबका कल्याण करने के लिए, अपने लीला विहार के लिए, कृष्णावतार हुआ है। भगवान का कार्य एक, परंतु प्रयोजन अनेक हैं।

नैमिषारण्य के ऋषियों ने सूतजी से पूछा "हे सूत, क्या तुम जानते हो कृष्ण क्या करने की इच्छा से प्रकट हुए ?" मंत्र-दृष्टा ऋषि भी कृष्णावतार का कारण जानते नहीं हैं। वो तो समाधि में मिला नहीं, शास्त्र में से नहीं समझ में आया है, यज्ञ में से सुलभ नहीं है, ज्ञान से जिसका प्रकाश नहीं हुआ है, वैराग्य में से जो व्यक्त नहीं हुआ है, लौकिक भक्ति से जो जाना नहीं गया है, इसी कारण तो

उनकी जिज्ञासा जागृत हुई है। स्वयं पुरुषोत्तम ही अपने आपको जान सकते हैं। ब्रह्माजी, शंकरजी वगैरह अनुमान मात्र कर सकते हैं। जैसे हैं वैसे, यथार्थ, कोई भी जान नहीं सकता है इन कृष्ण को। कृष्ण को अनन्य भक्ति से जान सकते हैं उनका अनुभव कर सकते हैं, कृपा या कृपालभ्य भक्ति से। वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्-भागवत पढकर भक्ति हो, तो ही भगवान कृष्ण समझ में आते हैं। बुद्धि से तो शायद लौकिक विषय समझ में आ सकते हैं,- श्रद्धा-विशुद्ध बुद्धि से शास्त्र समझ में आ सकते हैं - अनन्य भक्ति से तो भगवान समझ में आते हैं। जिसमें श्रद्धा और बुद्धि तो स्वाभाविक ही रहती है।

स्वरूप-स्वभाव-सुंदरता का सर्वोत्कृष्ट सुमेल-श्रीकृष्ण :

भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर विविध लीलाएँ

कीं । शरणागत-समर्पित आत्माओं को सत्फल देने के लिए, सफल करने के लिए कृपा की है । फल तो वे स्वयं है । कृष्ण लीला भी फलरूपा है । इस फलात्मक स्वरूप को और भक्तानुरूप लीलाओं को भी भक्तमनोनिरोध, भक्त मनोरथ-पूर्ण में साधन बनाए हैं । यह कथा फलरूपा है । भक्त उद्धार में साधन भी है । परब्रह्म - पूर्णानंद - परमात्मा - पुरुषोत्तम - भगवान्, स्वयं श्रीकृष्ण ने अपना परमोत्कृष्ट सौंदर्य प्रकट किया । स्व-योगमाया का सामर्थ्य दिखलाया । प्रभु स्वयं को आश्चर्य हुआ ऐसा वो सौंदर्य था । सभी आभूषणों के आभूषण रूप यह स्वरूप है । ये भगवान आभूषणों से नहीं शोभा पाते, सभी आभूषण भगवान की सुंदरता से शोभा पा रहें हैं । यह तो है स्वरूप की सुंदरता । स्वभाव की सुंदरता भी कम नहीं है । प्राण लेने आई हुई पूतना को भी मातृ गति दे दी । दूध पिला के मारना चाहती थी । आकृति स्त्री की - माँ जैसी - कृति स्तनपान की - माँ जैसी । दुर्गुण के

सागर में से भगवान ने मोती जैसा गुण ढूंढ लिया । माँ जैसी आकृति-कृति देखी । प्रकृति तो दंभ की-आसुर धर्म भी न पालने वाली । माँ की आकृति में मारने का काम करने वाली । विकृति भी कुछ कम नहीं,- भयंकर जहरीला दूध, वो भी वक्षस्थल पर कालकूट जहर लगाकर आई हुई । कृपालु कृष्ण ने प्रकृति या विकृति के सामने नहीं देखा । माँ की आकृति और कृति देखकर सुकृति कृष्ण ने उसे मातृ गति दे दी । ऐसा दयालु दूसरा और कौन हो सकता है । उसकी ही शरण में जाना चाहिए । श्रीशुक और उद्धवजी जैसे ज्ञानी भक्त भी इन उदार उद्धार करनेवाले कृष्ण के शरणागत बन गए । स्वरूप, सुंदरता और सर्वोत्कृष्ट स्वभाव का सुभग समन्वय यानी श्रीकृष्ण ।

निरोध लीला - विचार :

भगवानने अपनी मनपसंद नहीं, भक्त की मन पसंद लीलाएँ की हैं । भक्त की अभिलाषा को पूर्ण किया है । भगवान निर्दोष हैं - चोरी दोष है । फिर

भी भक्ताभिलाषा से माखन-चोरी वगैरह लीला की है । कुमार अवस्था स्वीकारी और उसके धर्म भी स्वीकृत किये हैं । धौर्त्य-धाष्ट्र्य ऐसी लीलाएँ भी की हैं । यह अवस्था का दोष है - भगवान तो निर्दोष हैं । इस तरह भगवान स्वरूप और स्वभाव की सुंदरता से सभी की आँखे और अंतःकरण का आकर्षण करते हैं, अपनी तरफ खींचते हैं, सानुकूलता से स्थिर कर देते हैं । अनुकूलता से सबको आनंद और आकर्षण होता है । अन्यत्र भटकने से रोक देता है । इसे निरोध कहते हैं, अनायास से, हर्ष से की गई चेष्टा लीला है :

(१) अपनी अचिंत्य शक्तियों के साथ विश्व में भगवान की लीला ।

(२) भक्तों के प्रपंच (विश्व विस्मृति पूर्वक) भगवान में आसक्ति ।

(३) भक्तों के प्रपंच, देह आदि का अभाव (अलौकिक देह की प्राप्ति) ।

इन तीनों को निरोध कहा जाता है । इस निरोध में फलात्मक भगवान का स्वरूप ही साधन है । भगवान की फलात्मिका लीला भी साधन है । भगवान में आसक्ति द्वार (माध्यम) है । भक्तों को अलौकिक देह की प्राप्ति फल है । भगवान विश्व में प्रकट हो कर, अपनी अनंत अचिन्त्य शक्तियों के साथ लीला करके, भक्तोंका पूरा विश्व-विस्मरण करवाकर, अपने में आसक्ति दे कर, लीला में उपयोगी अलौकिक (अप्राकृत) देह का संपादन करते हैं । यह निरोध है ।

फलात्मक स्वरूप और फलात्मिका लीला भी जिसे भगवान साधन रूप बना दे तो निरोध तो महाफल ही होगा । भक्त का निरोध भगवान में, भगवान का निरोध भक्त में - यह पूर्ण निरोध है । मुक्ति और आश्रय तो प्रत्यापाति है - पूर्व भाव सम्पादन रूप है ।

श्रीनंदमहोत्सव : एक विचार :

भक्तों का ऐसा निरोध अपने आप में कराने के लिए, प्रभु मथुरा में प्रसिद्ध रुप से प्रकट हुए, गोकुल के नन्दालय में गुप्त रीति से प्रकट हुए । मथुरा में महिमा दिखाई - माँ-बाप, देवकी वसुदेवजी ने स्तुति की । सब अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार, सभी स्वीकार करें, ऐसे प्राकृत शिशुरूप प्रभु बने ।

वसुदेवजी को प्रेरणा देकर बालक रूप से, रात्रि में गुप्त रीति से गोकुल में पधारे । गोकुल में तो वे पिता के पुत्र हैं । दूसरे दिन सुबह अपने प्यारे पुत्र के जन्म का महोत्सव श्रीनन्दजी ने मनाया । सर्वत्र मंगल हुआ । सर्वत्र शोभा है । विप्र वेद विधि कर रहे हैं । दक्षिणा दी जा रही है । घर, गाय और गोपीजन ने श्याम के स्नेह स्वागत में सुशोभन किया है । वाद्य बज रहे हैं, बधाई दी जा रही है । आनंद से सब उछल रहे हैं, गा रहे हैं, नाच रहे हैं, लूट-

लूट के मिठाई खा रहे हैं । “नन्द के आनन्द भयो - जय कन्हैयालाल की ।’’ दही, दूध, घी उछाल रहे हैं । अज्ञ, विज्ञ, सुज्ञ, प्राज्ञ, सभी मग्न हैं । सभी प्रेम की मस्ती में झूम रहे हैं ।

कई जगहों पर आज वेश के साथ भी नंदमहोत्सव की कथा में उसे मनाया जाता है । वसुदेवजी टोकरी में बालक ला रहें हैं ऐसा भी करते हैं । अगर वसुदेवजी, इस तरह, प्रत्यक्षमें, दिन में, बालक को लेकर आयें तो नन्दजी को बालक क्या अपना लगेगा ? जब अपना ही न लगे तो आनंद उत्सव होगा ? कंस की कैद में से, दिन में, वसुदेवजी बालक को लेके आ सकते थे ? आए थे ? बालक को लाए थे ? मनोरंजन की अतिरेक में तो विज्ञ बिना तो ऐसा कौन सोच सकता है ? नन्द-महोत्सव प्रसंग में, कथा में प्रभु को झूले में झुलाना, श्री गिरिराज पूजा प्रसंग में कार्डबोर्ड, पथ्थर, थरमोकोल वगैरह से श्रीगिरिराज बनाकर उनकी पूजा,

भोग, परिक्रमा करना, श्रीरुक्मिणि विवाह प्रसंग पर कथा में, वरघोड़ा, बारात लग्न गीत वगैरह प्रसंग क्या विचारणीय नहीं हैं ? इन सब से क्या कथा की गरिमा बनी रहती है ? विचारशील विचार करें ।

वैकुंठ से व्रज की विशिष्टता :

भगवान ने व्रज को अपना गिना है । व्रज में तो भगवान ने वैकुंठ प्रकट कर दिया है । फिरभी वैकुंठ से भी ज्यादा विशेषता व्रज में प्रकट की है । वैकुंठ में वैभव तो विपुल है, अलौकिक है, फिर भी भगवान के चरण चिन्हों का वैभव तो व्रज भूमि को ही मिला है । वैकुंठ में भगवान पालक हैं - व्रज में तो वे बालक हैं । वैकुंठ में भगवान सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ स्वामी हैं, व्रज में तो ऐसे होने के बावजूद वे स्निग्ध, मुग्ध स्वजन हैं । वैकुंठ में भगवान चतुर्भुज हैं व्रज में द्विभुज । वैकुंठ में तो एक लक्ष्मीजी अपने स्वामी की सेवा करतीं हैं, व्रज में तो हजारों व्रजलक्ष्मीजीयाँ अपने प्रियतम की सेवा लीला पूर्वक

करती हैं । वैकुंठ में लक्ष्मीजी-महारानी की तरह झूला झूलती हुई प्रिय के कर्म गाती हैं, व्रज में वो फूल बेचने वाली होकर घर-घर में फूल पहुँचाने की सेवा करती हैं । वैकुंठ में मूर्तिमंत वेद सुंदर स्वर से भगवान का सुस्वर गान करते हैं, व्रज में श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, गोपीजन और वेद मंत्रो के अधिष्ठाता रूप गोप भगवान का सुस्वर गान करते हैं । वैकुंठ में भगवान सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं, व्रज में वे प्रेम से परतंत्र हैं । वैकुंठ में सभी प्रभु की आज्ञा का पालन करते हैं, व्रज में तो वे सभी प्रियजनों की आज्ञा पालन करते हैं । वैकुंठ में सभी भगवान के अनुकूल हैं व्रज में भगवान सबके अनुकूल हैं । वैकुंठ में अधिकारियों को गणितानंद लेने जाना पड़ता है, व्रज में तो पूर्णानंद प्रदान करते हुए प्रभु सामने से जाकर अपने प्रियजनों से मिलते हैं । वैकुंठ में प्रभु अपने घर में विराजते हैं । व्रज में तो वे भक्तों के घर में विहार करते हैं । वैकुंठ में सभी सेवक भगवान की

सेवा करते हैं, व्रज में तो भगवान सेवकों की सेवा भी कभी कर लेते हैं । वैकुंठ में तो गुणातीत (निर्गुण) सावधान मुनियों को कृपा से दर्शन होते हैं व्रज में तो गुणातीत फिरभी सगुण भाववाले भक्तों को भी भगवान सर्वसुख और लाभ देते हैं । वैकुंठ में तो पुरुषोत्तम लोक-वेद प्रसिद्ध रूप से बिराजते हैं, व्रज में तो पुरुषोत्तम लोक-वेदातीत रुप से विलास करते हैं । वैकुंठ लीला मर्यादा-मार्ग का फल है, व्रज लीला पुष्टि-मार्ग का फल है । वैकुंठ भक्तों के लिए भगवान के धाम रूप है, ज्ञानियों के लिए प्रकाश रूप है, व्रज तो भगवान ओर भक्तों का नित्य लीला-धाम है । वैकुंठ में से लौटने वाले हरि इच्छा से मर्यादा-मार्ग में होते हैं, व्रजलीला में से लौटने वाले भगवदिच्छा से पुष्टि-मार्ग में होते हैं । वैकुंठ मर्यादा-भक्तों को प्यारा है व्रज पुष्टि-भक्तों को प्यारा है । वैकुंठ में भगवान किसी के पुत्र नहीं हैं स्वतंत्र हैं, व्रज में तो वे माता पिता के लाड़ले पुत्र हैं

परतंत्र हैं । वैकुंठ में भगवान के ऐश्वर्य आदि गुण मुख्य हैं, व्रज में ऐश्वर्य आदि गुए होने के बावजूद माधुर्य मुख्य है । वैकुंठ में चतुर्भुज भगवान चार आयुध रखते हैं, व्रज में तो वे द्विभुज रहकर वेणु धरते हैं । वैकुंठ में भगवान को चार आयुध होने के बावजूद असुर वध नहीं करना होता, व्रज में तो निरायुध भगवान असुरों को मारते हैं उनका वध करते हैं । उन्हें तार देते हैं । वैकुंठ में तो अविद्या दूर होने के बाद भगवान की इच्छा से पहुँचा जाता है, व्रज में तो भगवान सामने से चलकर भक्तों की अविद्या आदि दूर कर देते हैं । वैकुंठ में विपत्ति का अनुभव नहीं होता है, व्रज में तो विपत्ति आती है - प्रपत्ति से दूर होती है संपत्ति रूप बन जाती है । वैकुंठवासी बुध-विबुध हैं, व्रजवासी अबुध हैं । वैकुंठ में से अवतार लेकर भगवान और लक्ष्मीजी भूतल पर पधारते हैं, व्रज में से भगवान और लक्ष्मीजी कहीं जाते ही नहीं, नित्य निवास करते हैं । वैकुंठ तो

साधन बल के रूप से भी प्रभु दे देते हैं, व्रज तो निःसाधन जनों को फलरूप से प्रभु दे देते हैं । वैकुंठ में शीतल-भाव की समृद्धि होना संभव है, व्रज में ऊष्ण-भाव की समृद्धि है । अद्भुत है यह व्रज-विहार, व्रज-विहारीजी और व्रज-भक्त । ये व्रजाधिप तो निःसाधन जन के फलरूप से प्रकट हुए हैं ।

पुरुषोत्तम स्वरूप : एक विचार :

आनंदरूप हरि की लीला तो समग्र भागवत में है, श्रीमद्-भागवत के सभी बारह स्कंधो में है फिर भी कई स्कंधों में अंश, अंशांश, आवेश, कला, विभूति वगैरह रूप में कृष्ण की क्रीड़ा कथा कही गई है । दशम स्कंध में तो वे पुरुषोत्तम-रूप से प्रकट बिराजते हैं । परमानंद का प्रदान करते हुए वे लीला विहार करते हैं । दशम स्कंध के पूर्वार्ध में माधुर्य विशेष प्रकट है । उत्तरार्ध में ऐश्वर्य । पूर्वार्ध में भगवान भक्त के वश हैं, उत्तरार्ध में भक्त भगवान के वश हैं । पूर्वार्ध में लोक-वेदातीत-पुरुषोत्तम की लीला है,

उत्तरार्ध में लोक-वेद-प्रसिद्ध पुरुषोत्तम की लीला है । पुरुषोत्तम तो एक और अद्वितीय हैं । वे अपनी अलग-अलग लीलाओं के द्वारा अलग-अलग अनुभव कराते हैं । सर्वतंत्र स्वतंत्र भगवान स्वेच्छा से भक्तवशता भी प्रकट करते हैं । ये पुरुषोत्तम, लोक-वेद मर्यादा और स्वमर्यादा का पालन करके लीला करें तो मर्यादा पुरुषोत्तम । फिर भी मर्यादा का उल्लंघन क्वचित करते हैं पुष्टि प्रकट करते हैं । पुष्टि तो भगवान का नित्य सिद्ध सनातन धर्म है । जहाँ भगवान हैं वहाँ पुष्टि तो है ही । प्रकट करें न करें - स्वतंत्र हैं न ? कोई नियम या सिद्धांत में भगवान को बाँधा नहीं जा सकता । फिर कृपा से भले ही वे स्वयं बँध जायें, दामोदर हो जायें । पुरुषोत्तम अपना सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञता लीला के अनुरूप प्रकट करके, लोक वेद मर्यादा पालन करें या न करें, प्रायः स्वरूप मर्यादा पालें, वहाँ लोकवेद-प्रसिद्ध पुरुषोत्तम कहलाते हैं । स्वकीयों के लिए, लोक वेद मर्यादा तो

ठीक, स्वरूप मर्यादा का भी उल्लंघन करके, स्वरूप बल से स्वप्राप्ति कर पुष्टि प्रकट करें, सभी मर्यादाओं को प्रेम-माधुर्यमें मग्न कर दें, तो लोक-वेदातीत (पुष्टि) पुरुषोत्तम हैं । भगवान मर्यादाओं का आवश्यक उल्लंघन लीला के लिए करते हैं, सभी मर्यादाओं से पर होकर विहार करते हैं । लोक वेद मर्यादाओ को स्वार्थवश-अनावश्यक तोड़नेकाकाम तो असुर करते हैं । नदीमें जोरदार बाढ़ आने से, उसका पानी कभी कभी पुल के ऊपरसे गुजर जाता है और कभी पुल को भी तोड़ देता है । मर्यादा के पुल से प्रभु लीला पूर्वक पार हों तो पुष्टि है । स्वार्थ वश उसे तोड़ा जाए तो वह आसुर सृष्टि है । प्रभु तो सर्वसमर्थ हैं । सभी विरुद्ध धर्म भगवान में एक साथ बिना विरोध के रहते हैं ।

अवतारी हैं - कृष्ण :

भगवान अप्रकट रहकर भक्त कार्य करें वह ईशानुकथा-भक्तिरूप है । भगवान प्रकट होकर भक्त के सभी कार्य करें वह निरोधरूप है । अन्य अवतारों में तो भगवान कार्य पूरा हो तब तक ही बिराजते हैं, कृष्णावतार में भगवान १२५ साल बिराजे हैं । अन्य अवतारों में तो सिर्फ भूतल पर ही लीला की है, कृष्णावतार में तो स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल तीनों लोक में लीला की है । सभी अवतार हैं, कृष्ण तो अवतारी हैं । दूसरे अवतारों में की हुई सभी लीलाओं का समन्वय कृष्ण अवतार में है । वे रुप और गुण से आकर्षण करते हैं । लीलाओं से आनंद देते हैं । मधुरता से मग्न कर देते हैं ।

प्रभु के लिए यौवन बचाए - धर्मशील :

नवम स्कंध में कहे हुए चंद्रवंश और सूर्यवंश के चरित्र परम अद्भुत हैं । भगवान् और भगवान के चरित्र अद्भुत, उनके भक्तों के चरित्र परम अद्भुत । भगवान मिला दें ऐसी शक्ति उनमें है । मर्यादा-भक्ति सूर्यवंश में - पुष्टि-भक्ति चंद्रवंश में । दोनों के फलरूप से पुरुषोत्तम स्वयं प्रकट हुए हैं । भगवान के चरित्र से भक्त राजी होते हैं । और

भक्तों के चरित्र से तो स्वयं भगवान राजी होते हैं । यदुराजा संपूर्ण धर्मशील हैं । उन्होंने यौवन पिता को नहीं दिया है । यौवन तो प्रभु सेवा के लिए है । उसे संभाल कर सेवा में उपयोग करना चाहिए । यौवन, अपने लिए, पिता - परिवार - पत्नी - पुत्र - पद - पैसे - प्रतिष्ठा - परोपकार के लिए नहीं है । यौवन और जीवन तो उसके दाता भगवान के लिए है । उसे अन्यत्र व्यतीत करना अपराध है, आत्मघात है । सच्चा धार्मिक यह समझाता है । धार्मिक को सोच कर धर्म करना पडता है । धर्मशील के तो स्वभाव में ही धर्म बुना होता है । वो बिना सोचे भी कुछ करे तो भी धर्म ही होता है । यह स्वाभाविक धर्म यदु के जीवन व्यवहार में है । उसके लिए उसमें कुछ विशेषता नहीं होती है, विशेषता होने से वर्णन होता है ।

नवम स्कंध में पिता को यौवन न देनेवाले इन यदु को, मर्यादा-धर्म के विचार से उत्तम नहीं गिना है, विशेषता नहीं है । उनसे स्वाभाविक धर्म हो गया जो पुष्टि रूप है । इसीलिए तो दशम स्कंध में उन्हें सर्वथा धर्मशील कहा है । परीक्षितजी ने यह रहस्य समझा है । यदुने यौवन पिता को नहीं दिया, अपने लिए नहीं रखा, प्रभु को समर्पित कर दिया । इसमें यदु को कोई दोष नहीं लगा । पिता से भी अधिक प्रभु मुख्य हैं, विशेष हैं । प्रभु से विरूद्ध कुछ भी स्वीकार्य नहीं है । यह दोष नहीं - गुण है । यही हैं सर्वथा धर्मशील । उनके वंशमें पुष्टि-फलरूप से पुरुषोत्तम प्रकट हुए । इन प्रभु के पराक्रम परीक्षित ने पूछे । विरुद्ध धर्माश्रयी, प्रभु और उनके चरित्र को समझना कठिन है । निर्दोष में दोष दिखते हैं, उल्झा देते हैं ।

ऐसे लीला के प्रश्न परीक्षितजीने पूछे हैं :

(१) बलराम जी को रोहिणी का पुत्र कहा है, उनका देवकीजी से इसी शरीर से गर्भ संबंध कैसे ?

(२) भगवान मुकुंद तो सबको मुक्ति देने के

लिए अवतरित हैं, फिर भी मां बाप को बंधन में रखकर कर व्रज में क्यों चले गए ?

(३) संज्ञाति या असंज्ञाति गोपों के साथ उन्होंने कहाँ वास किया ?

(४) मथुरा में और व्रज में भगवान ने क्या किया ?

(५) प्रत्यक्ष में अपने मामा को नहीं मार सकते, फिर भी स्वहस्त से कैसे मार दिया ?

(६) मनुष्य जैसी देह से यादवों के साथ यदुपुरी में कितने वर्ष रहे ?

(७) प्रभु की कितनी पत्नियाँ हुई ?

यह और अन्य कृष्ण चरित्र विस्तार से कहने की विनती की । लीलामें गुण-दोष, भेद से बारह प्रश्न होते हैं । शास्त्र की नजर से ऐश्वर्य वगैरह छः गुण हैं । लोक दृष्टि से प्रभु के चरित्र में, गर्भावास, मामा को मारना, असंज्ञाति गोपो के साथ वास, बहुकाल तक द्वारका वास, अनेक पत्नी स्वीकार,

मनुष्य रुप,- यह छः दोष दिखते हैं । दिखते हुए दोषों का समाधान हो जाए तो श्रद्धा और स्नेह बढ़ते हैं, स्थिरता देते हैं, हरि-कथा-रसपान से अपना जीवन टिका हुआ है, इसी कारण दया से कथा सुनाने की विनती राजा ने श्रीशुकजी से की ।

मथुरा और व्रज में पुरुषोत्तम प्राकट्य :

जिज्ञासु श्रोता के प्रश्नों से, वक्ता के हृदय में प्रभु प्रति- उत्तर की प्रेरणा करते हैं । शुकदेवजी के हृदय में से अब प्रभु कथा कह रहे हैं । शुकदेवजी तो मात्र उसे बाहर प्रकट कर रहे हैं । प्रश्न को धन्यवाद दिये । कृष्ण-कथा का प्रश्न भी पृच्छक, श्रोता और वक्ता को पावन कर सकता है तो कथा क्या नहीं कर सकती ? भूमि दुष्ट राजा के भार से त्राहित हो गई । ब्रह्माजी के हृदय में रहे हुए प्रभु से अपना दुःख कहा । शंकरजी के साथ ब्रह्माजीने क्षीर सागर किनारे पर प्रभु से विनती की । प्रभु ने वसुदेव गृह में प्रकट होने का वचन दिया । प्रभु की

सेवा का सबको अवसर मिलना चाहिए, देवों को वहाँ जन्म लेना समझा दिया और फिर सब अपने अपने धाम गए ।

मथुरा यादवों की राजधानी है । वहाँ देवकीजी के विवाह प्रसंग पर वर वधु को विदाई देता हुआ कंस रथ चला रहा था । बीच में आकाशवाणी हुई । “इसका आठवाँ गर्भ तुझे मार डालेगा”- । गर्भ का अर्थ तो पुत्र होता है, यह बात वेदांत की है । मूर्ख कंस ये नहीं समझा । बहिन को मारने के लिए तैयार हो गया । वसुदेवजी के द्वारा भगवान ने उसको समझाया । “जन्म के साथ ही मरना तो निश्चित होता है । किसी का द्रोह न कर”, पर कंस ये नहीं माना । आखिरकार जन्मे हुए पुत्र तुम्हें दूंगा ऐसा कहा । पहला पुत्र वसुदेवजी कंस को देने गए । कंस ने कहा, “यह कुमार वापस जाए मृत्यु तो आँठवे से है” । वसुदेवजी को विश्वास नहीं हुआ, असंयमी का विश्वास नहीं रखना चाहिए ।

भगवान जल्दी प्रकट हों इसीलिए नारदजी ने आकर कंस को समझा दिया । कंस ने देवकी जी के छः पुत्रों को एक साथ मार डाला । दुष्ट को दया नहीं होती । भक्तों का दुःख दूर करने के लिए प्रभु जल्दी पधारते हैं । सभी भक्त - कंस - काल - अज्ञान से दुःखी हुए ।

भगवान ने योग माया को आज्ञा दी । देवकीजी के गर्भ में से शेषाविष्ट, संकर्षण का कर्षण किया । रोहिणीजी के गर्भ में वासुदेव व्यूह उसमें पदार्पण दिया । वसुदेवजी द्वारा देवकीजी के गर्भ में प्रभु प्रद्युम्न व्यूह से पधारे । गर्भ में भगवान हैं ऐसा देव समझे । सत्यात्मक भगवान की शरणागति और स्तुति की । विश्ववृक्षरूप भगवान हैं । लोक कल्याण के लिए भगवान अवतार लेते हैं । उन भगवान के नैय्या जैसे चरण मात्र से संसार सरलता से पार हो जाती है । सत्पुरुषों पर भगवान कृपा करते हैं, भगवान का अनादर करने वाले का अधःपतन होता

है । भगवान के साथ स्नेह करने वाले मार्ग भ्रष्ट नहीं होते हैं । भगवान जिसकी रक्षा करते है वह तो भयंकरता में भी निर्भय घूमता है । सत्त्व स्वरूप से जगत का हित प्रभु करते हैं । भगवदीयसत्त्व बिना तो अज्ञान-भेद दृष्टि दूर नहीं हो सकती । भगवान के नाम रूप सेवा करने वाले को भव में भटकना नहीं पड़ता । विनोद के लिए भगवान का अवतार है । भक्ति मार्गीय नौ अवतार धारण करनेवाले यदुत्तम को वंदन किये । माँ को सान्त्वना दी । फिर देव विदा हुए ।

मध्यरात्रि थी, आधिदैविक काल था, सर्वमंगल समय पर प्रभु प्रकट हुए, अदभुत बालक, चतुर्भुज स्वरुप । चार आयुध ऊँचे किये हुए । वसुदेव देवकीजी ने स्तुति की । अध्यात्म दीप, अभयप्रद प्रभु को विनती की । प्रभु ने पूर्व कथा सुनाई । उनको पुत्र भाव और ब्रह्मभाव से भजन करने के लिए कहा । पुष्टि-भक्ति और मर्यादा-भक्ति का प्रदान

किया । प्रकृति के अनुसार ग्रहण हो ऐसे बालक रुप से प्रभु ने दर्शन दिये । प्रभु-प्रेरणा हुई बंधन खुल गए । वसुदेवजी प्रभु को लेके चल दिये, शेषजी ने छत्र धरा । श्रीयमुनाजी ने मार्ग दिया । किसी ने भी जाना नहीं । यशोदाजी के यहाँ योग माया रूप से पुत्रीका जन्म हुआ । वसुदेवजी पुत्री को ले कर लौट आये । उस पुत्री ने जाते हुए देवी का रूप धारण करके कंस को सदेश दिया । “तुझे मारने वाला कहीं पैदा हो गया है’’ । मथुरा में प्रकट रूप से और ब्रज में गुप्त रूप से पुरुषोत्तम का प्राकट्य हुआ है । गोकुल वाले में मथुरा वाले एकत्रित होकर बिराजते है । ब्रज में तो वे पिता के पुत्र हैं ।

प्रेमप्रद लीला :

अपने यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है ऐसा समझाकर नन्दजी ने उत्सव किया । सभी उसका लाभ लेरहे हैं । नन्द महोत्सव है । रास उत्सव है,

मधुर भाव वाले गोपीजन का ही उसमें प्रवेश है । इस उछलते आनंद में सब सुधबुध खो बैठे हैं, सब मग्न हो गए हैं, आनंद में सब उछल रहे हैं । दूध, मेवा, दही, मक्खन, मिठाई, सब उछल रहे हैं । सब कुछ भूला देने वाला उत्सव प्रकट हो गया हैं । निरोध लीला में तामस सर्वोत्तम है । निरोध के लिए की हुई भगवान की लीलाओं को ही श्रीशुकदेवजी ने कहा है ।

पूतना मोक्ष से ही भगवान ने ग्वालों की अविद्या (अज्ञान) दूर की है । ज्ञानी के मेहनत करने पर भी जो नहीं मिल सकता वो भगवान ने भक्तों को खेल खेल में ही दे दिया । शकट भंग लीला की । माँ का लोक संग छुड़ा दिया । कोमल नन्हें चरण के स्पर्श से ही गाड़ी उलटी गिर गई । भक्ति के स्पर्श मात्र से ही संसार का संग छूट जाता है, विषय विदा हो जाते हैं । तृणावर्त रूप तृष्णा टाल दी - स्वजनों की । एक बार उन्होंने जम्हाई

ली । माँ को मुँह के एक छोटे से कोने में जैसा है- वैसा विश्व दिखा दिया । भक्त को विश्व नहीं अपने प्रेम भरे प्रभु चाहिए । गुरु गर्गजी द्वारा रामजी और श्यामजी के नामकरण संस्कार हुए । राम में तबसे कृष्ण का आवेश है । बलराम ने की हुई लीला भी कृष्ण लीला ही है । बाल-लीला और कुमार-लीला से व्रज में प्यार बढ़ाया । जिसे जो पसंद हो उसमें उसका मन खेलता रहता है । गोपीजन माँ के पास फरियाद लेकर लीला और लाला को फिर से याद करते रहते हैं । उस बहाने से पास आ जाते है दर्शन कर लेते हैं । किसी से भी न बँधे जाने वाले भगवान माँ के पुत्र हैं - रस्सी से बँध गए, दामोदर हो गए । भगवान ने भक्त-वशता दिखाई । देव दुर्लभ-ज्ञानी को अगम्य और योगी को अलभ्य फिर भी भक्तों के वश । प्रियतम नारदजी के शाप से यमलार्जुन वृक्ष हुए, भोगरत,- कुबेरपुत्रों को भी कृष्ण दर्शन मिला । उन्होंने सर्व इन्द्रियों से कृष्ण

सेवन और कृष्णतनुरूप भक्तों के दर्शन माँगे । लाला के सुख के लिए गोपों ने घर बदला । महावन में से वृंदावन में आए । प्रेम भरे प्रभु को सुख हो, उनकी सेवा हो, ऐसे घर में रहना चाहिए न ? भगवान ने ग्वालों का दुःख दूर किया - वत्सासुर को मारा । बकासुर को मार के भक्तों में से दंभ दूर किया । कौतुक लीला में आए हुए ब्रह्मा जी को आखिर में भगवान ने दर्शन तो दिये ।

आसक्ति-प्रद-लीला :

पौगंड दशा (६-९ साल की) जिसमें गाय चराते थे, खेलते थे, दस रसानुभव देते थे, बलराम जी के द्वारा धेनुकासुर का वध करवाया । कालीयादमन में स्वजनों की प्रेम परीक्षा की । कालीय को नाथ दिया । यमुनाजी को निर्विष किया । वासना बिना का हृदय और विषय बिना की इन्द्रियाँ सेवा में उपयोगी होती हैं । दावाग्नि का पान किया स्वजनों की रक्षा की । प्रलंबासुर को दाउजी द्वारा मरवाया । मुंजाटवी में

दावाग्नि पान किया, भक्तों को बचाया । वर्षा-शरद में वन विहार से दुःख दूर किये । वेणुगीत से श्रुतिरुप गोपीजन में रासरसिक ने रास संस्कार किये । घर में रहने वाले ये भक्त और वन में होती हुई लीला । आसक्ति बल से उसे देखते हैं - अनुभव करते हैं, गाते हैं । दृढ़ भक्ति उससे होती है ।

व्यसन-प्रद-लीला :

भगवान की एक शक्ति-कात्यायनी उनका व्रत कुमारिकाओं ने किया । वे ऋषिरूपा हैं । पतिरूप से कृष्ण की इच्छा की । भगवान ने चीरहरण लीला से वरण किया और आवरण दूर किया । उनको रास में मग्न किया । शरद में रास-रमण का वरदान दिया । यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों को शास्त्र ज्ञान था परंतु भगवद्-ज्ञान नहीं । उनकी पत्नियों पर कृपा की, माँग के अन्न खाया । सभी शास्त्र प्रेम संस्कार के बिना पंगु हैं । भगवान ने इन्द्रयाग रोक दिया । इन्द्रका अभिमान उतार दिया । हरिदासवर्य श्री

गोवर्धननाथजी का पूजन स्वयं किया और करवाया । भक्त में विश्वास करवाया । अन्नकूट खाया । इन्द्र की वृष्टि में से आत्मयोग से अपने अंगीकृत अनन्याश्रित व्रज की रक्षा की । लीला के लिए पर्वत उठा लिया - अचल रखा । सात दिन रक्षण पोषण किया । स्वजनों के अन्याश्रय को संपूर्ण दूर किया । अनन्य आत्मीयता दी, इन्द्र हतप्रभ हो गया, उसने क्षमा माँगी, अभिषेक किया, गोविंद नाम प्रकट हुआ, गायों के इन्द्र हुए-कृष्ण । वरुण के पाश में से नन्दजी को वापस ले आए । महाकारुणी कृष्ण ने गोपों को वैकुंठ दर्शन कराया । वैकुंठ (मोक्ष) से व्रज लीला की अधिकता समझाई ।

फल-प्रद-लीला :

विविध भोगचतुर हैं ये ब्रह्म । भक्त उनके स्वरूप आनंद का यथेच्छा अनुभव करते हैं । भक्त मुख्य भगवान गौण । यह तो अक्षरब्रह्म से अधिक फलात्मक परब्रह्म की लीला है । गणितानंद से

अधिक परमानंद का उसमें प्रदान । ये लीला विहार अलौकिक हैं । रसराज, सभी को अपना रस पान करवा रहे हैं । औपनिषद परम फल दशा का यह वास्तव फल है । लौकिक काम तो उसमें जरा भी नहीं । इस में एक नहीं - सर्व रस बरस रहे हैं । अनेक कृष्ण रास में खेल रहे हैं । जिन श्रुतिरूपा-ऋषिरूपा सब गोपीजन को मधुर भाव है उनको मधुराधिपति माधुर्य मग्न कर दे रहे हैं - इस रासोत्सव में । श्रृंगार-रसात्मा श्री कृष्ण । श्रृंगार रस में संयोग-वियोग का क्रम चल रहा है । संयोग में कृष्ण रस का अनुभव किया । प्रभु ने मद-मान दिये । प्रशमन-प्रसाद के लिए अंतर्हित हो गए । स्वकीय को विकलता में ढूंढते हुए, “गोपीगीत” का गान हुआ । प्रियतम न मिलने पर भक्त विरह में रो पड़े । निःसाधन हो गए । निःसाधन फलात्मा-साक्षान्मन्मथ-मन्मथ प्रकट हो गए । सभी महारस में मग्न हो गए । दाऊजी को साथ रखकर भगवान ने

रास खेल में शंखचूड़ को मारा । उसका मणि दाऊजी को दिया । गोविंद गोचारण में पधारे । व्रज भक्तों का चित्त उनके पीछे पीछे जाता है । घर में रहते हुए भी वन की लीला का अनुभव करते हैं गान करते हैं । श्री गोपीजन दिन में भी यह “युगलगीत” गाते हुए आंतररमण में खो जाते हैं ।

राजस-सात्त्विक भक्तों को लीला सुख दान :

राजस भक्तों को भी यथोचित सुख देते हुए कृष्ण विहार करते हैं । अरिष्ट-केशी-व्योम को उनने मारा । संसारी भक्त अक्रूर के साथ मथुरा आए । भाररुप अपने मामा व उनके साथियों को मारा । माँ बाप को बंधन में से मुक्त किया । उज्जैन में विद्याध्ययनके लिए गए । फिर उद्धवजी के द्वारा प्रिय संदेश भेजा, भ्रमर गीत हुआ । जरासंध को हराया । समुद्र के ऊपर द्वारका नगरी बसाई । श्री द्वारकाधीशजीने स्त्री परिग्रह किया । रुक्मिणी जी के साथ विवाह किया और दूसरी सात स्त्रियों के साथ

भी विवाह किया । नरकासुर वध करके सोलह हजार स्त्रियों के साथ भी विवाह किया । अनुपम गृहस्थ आश्रम दर्शाया । सात्त्विक भक्तों को भी सुख दिया है इन कृष्ण ने । दाऊजी के द्वारा व्रज वासियों को सुख दिया । मिथ्या वासुदेव को मारा और उनका उद्धार किया । नारदजी को दिव्य दाम्पत्य जीवन दर्शन करवाया । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के लिए जरासंध की कैद में से राजाओं को छुड़वाया ।

यज्ञ में अग्रपूजन कृष्ण का हुआ । शिशुपाल ने विरोध किया, गालियाँ दीं - उसका वध किया । अपने आप में उसको समाया । दंतवक्त्र को भी मार के मोक्ष दिया । बलराम के द्वारा तीर्थ यात्रा की, तीर्थोंको पावन किया । भक्त पाण्डवों को महाभारत के युद्ध में विजयी बनाया । सखा सुदामाजी को स्नेह और उनकी रंक पत्नी को वैभव दिया । कृष्ण-कृपा सभी परिस्थितियों में है ऐसा समझने में ही सच्चा सुख है । कुरुक्षेत्र में वसुदेवजी

के पास यज्ञ करवाए ।

दिव्य छः गुण-दर्शन :

श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं । देवकीजी के मरे हुए पुत्रों को वापस जिंदा कर दिया । बहिन सुभद्राजी का अर्जुन के साथ विवाह किया । जनक और श्रुतदेव को मिथिला में सुख देने पधारे । स्वयं देवरूप - विप्रवेदरूप ऐसा उनको समझाया । सभी वेद तात्पर्यवृत्ति से ब्रह्म प्रेरक हैं ।

श्रुतियाँ भगवान की ही स्तुति करती हैं । माहात्म्य पहचान कर कृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए । यह उनका सार है । महादेवजी को भगवान ने भस्मासुर से बचाया । भृगुऋषि की लात खाकर-क्षमाशीलता से, सर्व-श्रेष्ठता दिखाई । कृष्ण की पत्नियाँ भी रात को भगवान के गान करती हैं जो महीषी गीत है । भगवान, भगवान की लीला, लीलाओं का परिकर नित्य है । नित्य लीला-बिहारीजी को वंदन ही हो सकते हैं । वंदन उनको ।

प्रकरण विभाग :

दशम स्कंध में : जन्म प्रकरण (अ. १ से ४) में प्रभु के प्राकट्य का हेतु, प्राकट्य का उद्यम, प्राकट्य के लिये रूपांतर का स्वीकार और प्राकट्य के लीलानुरूप कापट्य या नाट्य ऐसे क्रमशः अध्याय हैं ।

तामस प्रकरण (अ.५ से ३२+३=३५) में तामस भाव वाले भक्तों को स्वरूप सुख देते हुए कृष्ण क्रीड़ा करते हैं : उसमें प्रमाण, प्रमेय, साधन, फल ऐसे चार अवांतर प्रकरण हैं ।

प्रेम, आसक्ति, व्यसन, फल ऐसे भी नाम से यह प्रसिद्ध है या बाल-लीला, मध्य-लीला, प्रौढ़-लीला, काम-लीला ऐसे भी जाने जाते हैं । हरेक में सात-सात अध्याय हैं । (७x४=२८)

ऐश्वर्य, वीर्य, यशः, श्री, ज्ञान, वैराग्य, ऐसे छः धर्म और धर्मी भगवान् मिलके सात - ऐसे लीलानुरूप सात अध्याय है ।

प्रचलित श्रीमद्-भागवत में दशम स्कंध पूर्वार्ध में अ.१२,१३,१४ कौतुक लीला रूप हैं। प्रक्षिप्त अध्यायत्रयी कहते हैं।

लीला उसमें भगवान की है परंतु अन्य कल्प की है। ब्रह्माजी को मोह न होनेका वचन भगवान ने दिया था, फिर भी उन्हें मोह हुआ - जो इन अध्यायों में दिखता है। इसी कारण ये श्रीमद्-भागवत कथा के कल्प से अलग हैं और इसे प्रक्षिप्त अध्यायत्रयी नाम से श्रीमहाप्रभुजी ने गिना है। श्रीमद्-भागवत के कई श्लोकों को भी श्री महाप्रभुजी इसी कारण विगीत कहते हैं।

राजस प्रकरण : (अ.३६-६३) : पूर्ववत् जैसे प्रमाण, प्रमेय, साधन, फल (७x४)=२८ अध्याय में राजस भक्तों को सुख दिया है।

सात्त्विक प्रकरण : (अ.६४-८४) : सात्त्विक भक्तों को सुख देते हैं जिनको प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। स्वतः उनको प्रेरणा मिलती है। प्रमेय,

साधन, फल (७x३=२१) इसलिये यहां प्रमाण प्रकरण नहीं है।

यहाँ पर तीनों प्रकरणों में पहले छः अध्याय धर्म रूप, (६x३=१८) और आखरी ८२-८३-८४ अध्याय धर्मी रूप होने का भी मत है।

गुण प्रकरण : (अ.८५-९०) : जिसमें भगवान के छः धर्म रूप छः अध्याय हैं। यह कृष्ण बन बैठे भगवान नहीं स्वयं भगवान् हैं - ऐसा वे सूचित करते हैं। इस तरह पाँच प्रकरण में पाँच प्रकार से श्री कृष्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वयं लीला करते हैं। ढाई-ढाई प्रकरणों का पूर्वार्ध और उतरार्ध है। इसी कारण क्रमशः ४६+३=४९ और ४१ अध्याय होने के बावजूद विषमता नहीं है।

ग्यारहवा स्कंध-सार :

ब्रह्म भाव ब्रह्मवाद :

ग्यारहवें स्कंध में कालात्मा-पुरुषोत्तम-कृष्ण की लीलाऐं हैं। यादवकुल पृथ्वी का भार कम करने में

उपयोगी हुआ । वो खुद अब भाररूप होने से भगवान यादव कुलोपसंहार करते हैं । यादवकुल नित्यलीलारूप और मायिक भी है । यहाँ मायिक उपसंहार कहा है । भगवान की व्रज, मथुरा, द्वारका लीला नित्य है । सर्व-लीला-विशिष्ट भगवान् सर्वत्र सर्वदा क्रीड़ा करते हैं । स्वेच्छा से भक्तभावानुसार लीला को प्रकट करते हैं अनुभव देते हैं । अप्रकट लीला तो नित्य चलती है । भगवान ने द्वारका में नारदजी के द्वारा वसुदेवजी को ज्ञान दिया । देवर्षि ने राजा निमि,- नौयोगेश्वर संवाद रूप ब्रह्मभाव देते हुए, ऐसे भगवद् धर्म कहे । उसमें :

१. योगेश्वर कवि ने अभय प्रद, प्रभुप्रद भागवत धर्म कहे है ।

२. योगेश्वर हरि ने भक्त परिचय दिया है ।

३. योगेश्वर अंतरिक्ष ने माया की पहचान दी है ।

४. योगेश्वर प्रबुद्ध ने माया से पर होने का सरल उपाय दिखाया - नारायण परायणता ।

५. योगेश्वर पिप्पलायन ने नारायण निष्ठा - नित्य स्थिति का वर्णन किया ।

६. योगेश्वर आविर्होत्र ने कर्म योग बताया ।

७. योगेश्वर द्रुमिल ने भगवान के अवतार चरित्र संक्षिप्त में कहे ।

८. योगेश्वर चमस ने भगवान का भजन न करनेवाले की स्थिति का वर्णन किया ।

९. योगेश्वर करभाजन ने युगानुरूप भजन का वर्णन किया ।

सायुज्य मुक्ति देनेवाला, तत्त्वों का अतिक्रमण करनेवाला, ब्रह्मवाद का ज्ञान भगवान ने अपने प्रिय उद्धवजी को दिया । उसमें जगत को ब्रह्मात्मक समझाया है, प्रतीतिरूप मायिक की मिथ्या रूप से पहचान कराई है । बुद्धि से दोष निवारण के लिए श्रीदत्तात्रेयजी के पच्चीस गुरुओं का उपदेश कहा है । सदादृत (मर्यादा पुष्टि भक्ति) सत्संग की महिमा,

पुष्टि-भक्ति मार्ग, सर्वात्म भाव, सर्व त्यागपूर्व, कृष्ण शरणागति को प्रभुप्रद कहे हैं । जगत्-संसार-भेद-हंस गीता से ज्ञान कहा है । ऊर्जिता भक्ति प्रभु को सुख देती है । योगसिद्धियाँ तो मोक्ष में विघ्नरूप हैं । उन सब के आधार भगवान के चरण हैं । सर्व उत्तमता भगवान की विभूति रूप है । वर्णाश्रम धर्म वर्णन सर्व हितावह है । महद्-विमृग्य-भक्तियोग आत्म-निवेदन रूप है । निरपेक्षभाववाली भक्ति ही कृतार्थ करती है । द्रव्यशुद्धि कर्म नियंत्रण के लिये है । मूलतत्त्व प्रकृति-पुरुष-काल तीनों ब्रह्मरूप हैं । भिक्षु गीता वैराग्य देनेवाली है । ऐल-गीत मोह-निवारक है । क्रियायोग से प्रभु प्रसन्न होते हैं । अविकृत-परिणाम-ब्रह्मवाद-सिद्धांत सार है । सुमंगल भागवत धर्म रूप, सर्वत्र भगवद् भाव का भगवान ने निरूपण किया है । अपने प्रकट दर्शन देता हुआ, भुवन सुंदर मंगल स्वरूप भगवान ने अंतर्ध्यान किया । अप्रकट स्वरूप-लीला तो नित्य बिराजती है ।

प्रकरण विभाग :

ग्यारहवें स्कंध में : जीव मुक्ति (अ.१-२९) ब्रह्म मुक्ति (अ.३०-३१) जिसमें ब्रह्मभाव (अ.१-५) सायुज्य (अ.६-२९), अहंता नात्य त्याग (अ.३०), ममता नात्य त्याग (अ.३१) । ऐसे प्रकरण हैं ।

बारहवा स्कंध सार :

ब्रह्मोपदेश :

बारहवें स्कंध में कलियुग के दोष और उनमें से बचने का उपाय, कथा, सेवा-कृष्णाश्रय रुप से कहे हैं । चार प्रकार के प्रलय - नित्य - नैमित्तिक - प्राकृतिक और आत्यंतिक का स्वरूप कहा है । भगवान की प्रसाद शक्ति (प्रसन्नता) से ब्रह्मा और संहार शक्ति (क्रोध) से रुद्रजी उत्पन्न होते हैं । दोनों के सर्जन या विसर्जन में आश्रय कृष्ण हैं । कृष्णाश्रय से जन्म और मरण के चक्कर से बच सकते हैं । मरण देह का है आत्मा का नहीं । आत्मा तो भगवद् अंश है । ब्रह्मवाद की समझ से,

शरणागति पूर्वक कृपा हो तो देह बंधन में से छूट जाते हैं । अहंता ममता सर्वथा न रहे, सूक्ष्म लिंग देह भी नष्ट हो जाए, तब शुद्ध, मुक्त ब्रह्म सम्पन्न होता है । दस-लीला-विशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्-भागवतार्थ रूप हैं । वे सर्वत्र सर्वदा खेलते है । “मैं इन भगवान का हूँ ।” इस तरह से ब्रह्मोपदेश दिया । परीक्षित की अभय प्राप्ति - भागवती गति दिखाई । वेदशाखा प्रचार-तेजस्वी याज्ञवल्क्य का ज्ञान सम्पादन, पुराण लक्षण दिखाए । मार्कण्डेय मुनि पर प्रभु की कृपा,-सूर्यव्यूह और श्री भागवत क्रम कहे । कलियुग में श्री भागवताश्रय द्वारा कृतार्थता है ।

प्रकरण विभाग :

बारहवें स्कंध में श्रीकृष्णाश्रय (अ.१-३) जगदाश्रय (अ.४-५$^{१}/_{२}$) वेदाश्रय (अ.५$^{१}/_{२}$-७) भक्तियोगाश्रय (अ.८-१०) श्रीमद्-भागवताश्रय (अ.११-१३)

बारह लीलाओं का परस्पर संबंध : कार्य कारण भाव : स्कंधार्थ :

श्रीमद्-भागवत की प्रत्येक लीला परस्पर संबंध रखती है । प्रत्येक स्कंध का एक दूसरे के साथ कार्य और कारण भाव से संबंध है । अगला स्कंध कारण पिछला स्कंध कार्य है । प्रत्येक लीला का विचार करते हुए भी परस्पर संबंध समझमें आता है । प्रथम स्कंध में अधिकार लीला है । जिसमें श्रीमद्-भागवत में श्रोता वक्ता के अधिकार का संपादन है । यह अधिकार सत्ता, स्थान संबंध वगैरह बाह्य रूप से नहीं है । ऐसे बाह्याधिकार तो दोष प्रद हैं वाधक होते हैं । यहाँ आंतर-अधिकार है, जो अंतःकरण की योग्यतारूप है । अंतःकरण की स्थिति, अधिकार की पहचान करवाती है । भगवदिच्छानुसार यह मिलती-फलती है । अंतःकरण की योग्यता या पात्रता को शास्त्र ने फल प्राप्ति में

उपकारक या सहायक गिना है। ऐसे अधिकारी के कर्तव्य निर्धार-श्रवण साधन का निरूपण दूसरे स्कंध में है । शास्त्रार्थपूर्वक भगवान, का निरूपण दूसरे स्कंध में है । श्रवण के विषयरूप दशलीलावाले भगवान का निरूपण तीसरे से बारहवें स्कंध में है । अधिकार और साधन लाभ पश्चात् कार्यका आरंभ होता है, इसी कारण तीसरे स्कंध में सर्जनरुप सर्ग लीला है । भूत, मात्रा, इन्द्रिय, बुद्धि रूप में होकर, अशरीर (अप्राकृत) भगवान का ब्रह्मांड पुरुष शरीर स्वीकारे : यह सर्गलीला है । ब्रह्म में गुणों की विषमता से और क्वचित् अविषमता से यह संभव है । इस विषमता से बंधन और अविषमता से मुक्ति दोनों भगवान देते हैं । यही महिमा है, लीला है । ब्रह्मांड में से ब्रह्मांड पुरूष की उत्पत्ति विसर्ग लीला है । पुरुषार्थ-संबंधी, पुरुषार्थोंको व्यक्त करती हुई, भगवान अलौकिक पुरुषार्थ देते हैं ऐसा समझानेवाली, भगवान के माहात्म्य की पहचान करानेवाली,

यह लीला चौथे स्कंध में कही है । ब्रह्मांड पुरुष में से उत्पन्न हुए सबका योग्य मर्यादा से पालन यह स्थिति लीला है । पदार्थ मात्र को स्वाधीन करके, उसे योग्य मर्यादा में रखने रूप भगवान की विजय की कथा पाँचवे स्कंध में है । योग्य मर्यादा में स्थित हुए, उनकी अभिवृद्धि पोषण लीला है, जो पुष्टि-अनुग्रह को सामान्य रीति से समझाती है । कालादि को नष्ट करने वाला, भगवान के पराक्रमरूप, अनुग्रह के नाम से पहचानेजानेवाला, भगवान का धर्म पुष्टि है । यह छट्ठे स्कंध में कहा हुआ है । इस तरह से पुष्ट हुए वालों का आचार ऊति लीला है । यह कर्म-वासनारूप है । सातवें स्कंध में उसकी कथा है । वासना विजय करवानेवाला सदाचार यह मन्वन्तर लीला है । यह सद्धर्म रूप है । जिसकी कथा आँठवे स्कंध में है । सदाचार रूप सद्धर्म का फलः भगवान की भक्ति है । नौवें स्कंध में ईशानुकथा लीला-रस-भक्ति का निरूपण करती है । ये भक्तिपूर्ण

भक्त विश्व के विस्मरणपूर्वक भगवान में आसक्त हों - वह निरोध है। निरोध लीला दशम स्कंध में कही है। प्रपंच (विश्वरूप भगवान का विस्तार), से पर हुए निरुद्ध भक्तों को स्वरूप लाभ यह मुक्ति लीला है। यह ग्यारहवें स्कंध में है। मुक्त हुए भक्तों की ब्रह्म रूप से स्थिति यह आश्रय लीला है। यह बारहवें स्कंध मे कही है। श्रीकृष्ण आश्रय से कृतार्थता सिद्ध हो जाती है।

श्रीमद्-भागवत विशिष्टता :

श्रीमद्-भागवत फल भगवान् :

यह श्रीमद्-भागवत तो पुराण है। फिर भी पुराण तिलक है। पुराण पुरुष श्री कृष्ण रूप है। इनके सेवन से भगवान में प्रीति होती है, कृतार्थता मिलती है। भगवान में प्रीति रूप भक्ति से भगवदीयता मिलती है। भगवदीयता से सर्व पुरुषार्थ सफल हो जाते हैं। भगवदीय तो स्वतः मिलने वाले या प्रभु के दिये हुए मोक्ष की भी इच्छा नहीं रखते

हैं। भगवदीय तो भगवान की कथा-सेवा-रस में मग्न रहते हैं। श्रीमद्-भागवत के अंत में तो जन्म जन्म में भगवान की भक्ति, स्नेह पूर्वक सेवा की विनती की है। कृष्ण-कृपा बिना भक्ति नहीं होती है, कृतार्थता नहीं मिलती है। सर्वसंताप में से छूटने के दो उपाय बताए :

(१) भगवान का नाम स्मरण-दीन भावना से, आतुरतापूर्वक, स्नेह से, भगवान के स्वरुप-लीला के अनुसंधान पूर्वक भगवद्-नाम श्रवण, कीर्तन, स्मरण होता है। इस तरह सर्वसंताप, संपूर्ण रीति से सरलता से नष्ट हो जाते हैं।

(२) प्रभु को प्रणाम : शरण, समर्पण भाव, से विभु को वंदन हो तो दुःख दूर होते हैं। जीवन सफल होता है।

अंतःकरण में अनायास आह्लाद-आनंद का अनुभव होता है - ऊभरता है : हरि सब दुःखों को हर लेते हैं : सर्व सुखों का प्रदान करते हैं। दुःख

दूर होने और सुख प्राप्त करने - इन दोनों में सभी पुरुषार्थ समाजाते हैं । धर्म और अर्थ दोनों दुःख दूर करने में उपयोगी हैं । काम और मोक्ष, दोनों लौकिक-पार लौकिक सुख लाभ रूप हैं । इस कारण यहाँ दोनों नाम सूचक रीति से कहे हैं । सुख-दुःख की परंपरा मे जीवन व्यर्थ न बिताना पड़े, श्रीमद्-भागवत सेवन से यह सुलभ हो जाता है । प्रभु को प्रसन्न करने का प्रेम के सिवाय कोई मुख्य या श्रेष्ठ साधन नहीं है । इस प्रेम का निश्चित साधन है - श्रीमद्-भागवत । संसार में वैराग्यपूर्वक श्रीमद्-भागवत के तात्पर्य को समझाकर, भक्त-मुख से एक बार भी श्रवण से कृष्ण में निश्चित प्रेम होता है । जिससे जीवन में निश्चित हो जाते हैं । श्रीमद्-भागवत के अज्ञान या अन्यथा ज्ञान से भक्ति नहीं होती है । श्रीमद्-भागवत सेवन से तो, बेल के जैसी बढ़ती भक्ति, कृष्ण-फल को शीघ्रता से प्राप्त कराती हैं । आनंदरूप हरि की आनंदरूपा लीला सर्व दुःख हरनेवाली, सुखरूपा, स्वतः पुरुषार्थरूपा है । श्रीमद्-भागवत शब्दशः और अर्थशः श्रीकृष्ण का रूप है । जिसके अर्थानुसंधान पूर्वक पाठ से निश्चित रूप से श्रीकृष्ण धारण होते हैं । अर्थशः समझे हुए भगवान भक्ति का प्रदान करते है । कोई भी जीव, किसी भी प्रतिकूलता में कृष्ण की शरण में जाए, कृष्ण के साथ स्नेह करे, कृष्ण को सर्वस्व समर्पण करे, वो बिना साधन ही कृतार्थ हो जाता है । ज्ञानावतार व्यासजी और संसार सर्प दष्ट परीक्षित दोनों के संताप श्रीमद्-भागवत से शांत हो गए हैं । प्रसन्नता, जीवन सफलता सुलभ हो गई है । ज्ञानी, विज्ञानी, अज्ञानी, सभी को इस श्रीमद्-भागवत सेवन से, कल्याण-कैवल्य-(मुक्ति)-कृष्ण यथाधिकार मिलते हैं । भगवान् सच्चिदानद रूप हैं । - श्रीमद्-भागवत भी सच्चिदानंद रूप है । इनका आजीवन सेवन करते रहने से कृतार्थता निश्चित है । श्रीमद्-भागवत सेवन तो आंतरभजन रूप है । जिससे इस जन्म में ही

सेवा का फल सुलभ हो जाता है। भगवान को इस जन्म में, इस शरीर से, भूतल पर, अनुभव करने का अलौकिक सामर्थ्य सुलभ हो जाता है।

श्रीकृष्ण को, भगवद्रूप श्रीमद्-भागवत को और उन्हें यथार्थ समझाने वाले श्रीमहाप्रभुजी को वंदन ॥